मई 2024

दादावाणी

Retail Price ₹ 20

यह सोने की डिबिया है, उसके अंदर रखा हुआ हीरा एक बार खोलकर मैं दिखा देता हूँ। फिर डिब्बी बंद कर देता हूँ, उससे हीरा कहीं चला नहीं जाता। आपके लक्ष (जागृति) में रहता है कि इसमें हीरा ही है, क्योंकि आपने उसे देखा था। हमने ज्ञान दिया,उस घड़ी आपके मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार सभी ने 'एक्सेप्ट' किया कि भीतर 'खुद' शुद्धात्मा ही है। उसके बाद शंका खड़ी ही नहीं होती।

अडालज : कोऑर्डिनेटर शिविर : ता. 1 से 3 मार्च 2024

अडालज : पूज्यश्री का 54वाँ ज्ञान दिन : ता. 6 मार्च 2024

त्रिमंदिर में दर्शन

पूज्य नीरूमाँ की समाधि के दर्शन

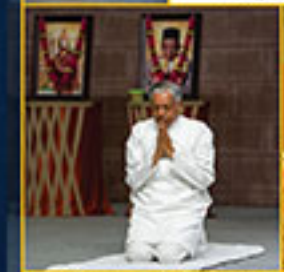

महात्माओं का आशीर्वाद लेते हुए पूज्यश्री

पूज्यश्री को शुभेच्छा देते हुए मुख्यमंत्रीश्री

पूज्यश्री को हार पहनाते हुए आप्तपुत्रों

भादरण : अविवाहित भाईओं का शिविर : ता. 7 से 11 मार्च 2024

सत्संग

नाटक

गरबा

प्रभात फेरी

भद्रकाली के मंदिर में दर्शन

वर्ष : 19 अंक : 7
अखंड क्रमांक : 223
मई 2024
पृष्ठ - 32

Editor : Dimple Mehta
© 2024
Dada Bhagwan Foundation
All Rights Reserved.
Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Printed at
Amba Multiprint
Opp. H B Kapadiya New High School, At-Chhatral, Tal: Kalol, Dist. Gandhinagar - 382729

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सिटी,
अहमदावाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज**,
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन : 9328661166-77
email: dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org
दादावाणी संबंधी शिकायत के लिए:
+91 8155007500

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
5 साल
भारत : 1000 रुपये
वार्षिक
भारत : 200 रुपये
भारत में D.D./M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

दादावाणी

अक्रम विज्ञान द्वारा अनुभव में आया नि:शंक आत्मा

संपादकीय

अक्रम विज्ञानी दादा भगवान (दादाश्री) की कृपा से ज्ञानविधि में अहंकार की रोंग बिलीफ फ्रेक्चर होते ही राइट बिलीफ बैठ जाती है। 'मैं चंदू नहीं हूँ, मैं शुद्धात्मा हूँ' की संपूर्ण प्रतीति हो गई है लेकिन संपूर्ण अनुभव और ज्ञान निरंतर नहीं रहते। यानी जब व्यवहार में कषाय उत्पन्न होते हैं तब *भोगवटा* (दु:ख) सहित खुद के शुद्धात्मा स्वरूप के प्रति शंकाएँ उत्पन्न होती हैं, जैसे कि 'मैं चंदू हूँ! मुझसे ऐसा हो गया? मैं आत्मा हूँ या शुद्धात्मा हूँ? क्या मेरा सारा ज्ञान चला गया है?'

'अक्रम विज्ञान' तो 'साइन्टिफिक' है, एक्ज़ेक्ट है! 'मैं शुद्धात्मा हूँ' और 'व्यवस्थित कर रहा है', ये समझ मिलते ही कर्म 'चार्ज' होने बंद हो जाते हैं। उसके बाद चंदूभाई से जो कुछ भी सही-गलत हो जाता है, वह सब 'डिस्चार्ज', परपरिणाम में हैं, उसमें वीतरागता रखना है। दादाश्री कहते हैं कि डिस्चार्ज के समय 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह *लक्ष* मत चूकना। पूरा संसारकाल खत्म होने के बाद भी 'मैं अशुद्ध हूँ', ऐसी शंका मत करना। तू शुद्ध ही है इसलिए 'शुद्धात्मा' कहा है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा *लक्ष* रहे, वह केवल दर्शन है, वही नि:शंक पद है, उसे भगवान ने 'क्षायक समकित' कहा है। अब, 'दादा' की पाँच आज्ञा का पालन करके व्यवहार में उत्पन्न हुई डिस्चार्ज आकुलता-व्याकुलता के सामने शुद्धात्मा की जागृति रखकर आत्मा की निराकुल दशा का अनुभव करना है।

दादाश्री कहते हैं कि मैंने आपको जो शुद्धात्मा दिया है, वह कैसा है? वीतरागों ने देखा-जाना और अनुभव किया है, जो केवलज्ञान स्वरूप है, मन-वचन-काया की तमाम संगी क्रियाओं से बिल्कुल असंग है। बिल्कुल निराला नि:शंक आत्मा दिया है। तीर्थंकरों को धन्य है कि उनकी कितनी गहन खोज है! देह में होने के बावजूद भी एकदम अलग आत्मा ढूँढ निकाला, यह बड़ा आश्चर्य ही कहलाएगा न! तीर्थंकरों ने जिस परमात्मा को जाना है, वह एकदम अलग आत्मा हमने देखा है। कभी भी शंका उत्पन्न न हो, ऐसा आत्मा दिया है। अत: 'ऐसा होगा या वैसा होगा', वह झंझट ही नहीं रही न! यह तो 'अक्रम विज्ञान' है, इसलिए शुद्ध आत्मा ही सीधा प्राप्त हो जाता है, ऐसा यह अविरोधाभास, वीतरागी विज्ञान है!

कृपालुदेव कहते हैं कि आत्मा संबंधी नि:शंकता उत्पन्न हो गई, तो 'वर्ल्ड' में कोई शक्ति उसे भयभीत नहीं कर सकती। नि:शंकता से निर्भय हो जाते हैं, नि:संग-असंग हो जाते हैं और उससे वीतरागता आती है। इससे ज़्यादा और क्या चाहिए? जगत् में एक नि:शंक व्यक्ति ढूँढना, वह बहुत कठिन चीज़ है। इस जगत् को नि:शंकता से जानो, कहीं भी शंका नहीं होनी चाहिए। जिन्होंने नि:शंकता से पूरा ही जगत् जान लिया है, ऐसे ज्ञानी के पीछे-पीछे चलकर हम भी नि:शंक आत्मा का अनुभव करें, यही हृदयपूर्वक अभ्यर्थना।

जय सच्चिदानंद

अक्रम विज्ञान द्वारा अनुभव में आया नि:शंक आत्मा

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ हैं अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। जहाँ पर भी 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर आप कोई बात न समझ पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें। अनुवाद में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि भविष्य में सुधार किया जा सकें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

अक्रम ने दिया अपूर्व शुद्ध भान

प्रश्नकर्ता : जब-जब हम अपने व्यवहार में और वर्तन में आते हैं तब, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' या 'चंदूभाई हूँ' उसका कुछ भी पता नहीं चलता। रियल-रिलेटिव में उलझन हो जाती है।

दादाश्री : उसे समझ लेने की ज़रूरत है। 'आप' चंदूभाई भी हो और 'आप' 'शुद्धात्मा' भी हो! 'बाय रिलेटिव व्यू पोइन्ट' से आप 'चंदूभाई' और 'बाय रियल व्यू पोइन्ट' से आप 'शुद्धात्मा' हो! 'रिलेटिव' सारा विनाशी है। विनाशी भाग में आप चंदूभाई हो! विनाशी व्यवहार सारा चंदूभाई का है और अविनाशी आपका है। अब 'ज्ञान' के बाद अविनाशी में आपकी जागृति रहती है। जागृति जिस हद तक पहुँची उतने ही आत्मा के नज़दीक पहुँचे।

अक्रम विज्ञान अर्थात् क्या? कि आत्मा और अनात्मा का विवरण होने के बाद दोनों अलग पड़ जाते हैं। एक आत्मविभाग, वह खुद का क्षेत्र है और एक अनात्मविभाग, वह परक्षेत्र है। जब तक संसार इन दोनों विभागों को नहीं जान लेता, तब तक 'मैं चंदूभाई हूँ,' ऐसा कहता रहता है। वह सापेक्ष आधार सहित है। 'मैं चंदूभाई हूँ', कहने से वह आधार टिका रहता है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा *भान* हो जाता है तो 'आप' आधार देना छोड़ देते हो, इससे वह निराधार हो जाता है।

'मैं चंदूभाई हूँ', वह विनाशी है, उसे 'मैं खुद हूँ', ऐसा मान बैठे हो। आप 'खुद' तो सनातन हो, लेकिन ऐसा *भान* उत्पन्न नहीं हो पाता। ऐसा *भान* हो जाए तो हो जाएगा मुक्त! 'मैं कौन हूँ', उसका *भान* ही नहीं है। 'खुद', 'खुद से' गुप्त रहने का प्रयत्न करता है। पराया सबकुछ जानता है! खुद, खुद से गुप्त रहता है, यह आश्चर्य ही है न! खुद, 'खुद' से कितने समय तक गुप्त रहोगे? कब तक रहोगे? 'खुद कौन है' यह जानने के लिए ही यह जन्म है।

वहम रखने जैसा है 'अहंकार' पर ही

बाकी 'खुद कौन है' देखो न उसी पर किसी को शंका नहीं होती न! बड़े-बड़े आचार्यों और साधुओं को भी खुद का जो नाम है, उस पर शंका नहीं हुई कभी भी! यदि शंका होने लगे तो भी हम समझें कि सम्यक दर्शन होने की तैयारियाँ हो रही हैं। सर्वप्रथम तो वह शंका ही नहीं होती न! बल्कि उसी नाम को मज़बूत करते हैं और ये सब क्रोध-मान-माया-लोभ उसी के कारण हैं।

कभी भी इस अहंकार पर वहम नहीं हुआ। सभी चीज़ों पर वहम हुआ है लेकिन अहंकार पर वहम नहीं हुआ। 'यह चंदूभाई, वह मैं हूँ' इस पर वहम हुआ तो वह अहंकार पर वहम हुआ कहलाएगा।

इसलिए यदि यहाँ पर शंका हो जाए तो क्रोध-मान-माया-लोभ सबकुछ चला जाएगा। लेकिन ऐसी शंका होती ही नहीं न! किस तरह से हो? कौन करवाएगा यह? जिस बारे में जन्मजन्मांतर से नि:शंक हो चुका है, उस बारे में

खुद को शंका होने लगे, ऐसा कौन कर देगा? जिस जन्म में गया, वहाँ पर जो नाम पड़ा, वहाँ उसी को सत्य माना। शंका ही नहीं होती न! कितनी अधिक मुश्किल है! और उसी के कारण ये क्रोध-मान-माया-लोभ खड़े रहे हैं न! आप यदि 'शुद्धात्मा' हो तो क्रोध-मान-माया-लोभ की ज़रूरत नहीं है और आप यदि 'चंदूभाई' हो तो क्रोध-मान-माया-लोभ की ज़रूरत है। पूरे शास्त्रों का 'सॉल्यूशन' (हल) यहाँ पर सिर्फ इतना ही जानने से मिल जाता है! लेकिन उस आत्मज्ञान को जानें किस तरह? और आत्मज्ञान जानने के बाद कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता।

आत्मा संबंधी नि:शंकता?

अब भगवान ने कहा है कि, किसी को भी आत्मा संबंधी शंका नहीं जाती। कृष्ण भगवान की वह शंका चली गई थी। वर्ना, आत्मा संबंधी शंका कि 'आत्मा ऐसा होगा या वैसा होगा, फलाना होगा या वैसा होगा, ऐसा होगा या वैसा होगा? थोड़ा बहुत कर्ता तो वह होगा न? कुछ बातों का तो वह कर्ता होगा ही न?' फिर ऐसी शंका रहा करती है। वर्ना कहेगा, 'कर्ता के बिना तो कैसे चलेगी यह गाड़ी?' अरे, तुझे नहीं पता चलता! वह तो 'ज्ञानी पुरुष' ही जानते हैं कि यह कैसे चल रहा है! अब वह आत्मा, जैसा 'ज्ञानी' ने जाना है, वैसा होता है, इस पुस्तक में लिखा है वैसा नहीं होता। पुस्तक में आत्मा संबंधी बात ही नहीं है कोई।

अर्थात् आत्मा के बारे में कोई शंका रहित हुआ ही नहीं है। ये तो कहेंगे, 'आत्मा की इतनी भावना तो होनी ही चाहिए न'! अब वे जिसे आत्मा मान रहे हैं, उसे मैं 'निश्चेतन चेतन' कहता हूँ। अब वहाँ पर आत्मा कैसे प्राप्त हो सकेगा? शंका ही रहेगी न फिर!

पूरा जगत् आत्मा को लेकर शंका में ही पड़ा हुआ है। लोग मुझसे पूछते हैं कि, 'ये क्रोध-मान-माया-लोभ आत्मा के अलावा तो कोई करेगा ही नहीं न?' मैंने कहा, 'शांति हो गई तब तो'! तब कहते हैं, 'लेकिन जड़ तो करेगा ही नहीं न?' मैंने कहा, 'जड़ ये नहीं करता, लेकिन चेतन भी कैसे कर सकेगा? जिसमें जो गुणधर्म नहीं हैं, वह उसे करेगा ही कैसे?' ऐसा है न, ये जो व्यतिरेक गुण हैं, इनका उन्हें पता नहीं होता न, कि दो चीज़ें साथ में हों तो तीसरा व्यतिरेक गुण उत्पन्न हो जाता है, खुद के गुणधर्म छोड़ते नहीं और नया गुण उत्पन्न हो जाता है। लेकिन 'ज्ञानी' के बिना वह समझ में कैसे आ सकता है?

इस तरह मनुष्यपना नहीं खोना चाहिए

अब 'आत्मा ऐसा होगा या वैसा होगा, ऐसा होगा या वैसा होगा' कोई ऐसी विचार श्रेणी में आया हो, उसे भगवान ने 'सम्यक्त्व मोहनीय' कहा है। ऐसी विचार श्रेणी में आए ही नहीं है अभी तक। ऐसी मोहनीय भी जाग्रत नहीं हुई है। अभी तो यह, मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय ही है अभी तक। सम्यक्त्व मोहनीय जाग्रत हो गई होती तो भगवान उसे 'महान अधिपति' कहते। यह तो एक 'प्लॉट' (जमीन) होता है या एक मकान होता है, इतना ही अधिपति होता है, उसमें तो खुद अपने आपको कितना ही धन्य मानकर पेट पर हाथ फेरकर 'होइया' करके सो जाता है!

अरे, क्या देखकर सो जाता है? अनंत जन्मों से ऐसे 'होइया' करके सो गया! शर्म नहीं आती? और वापस पेट पर हाथ फेरकर 'होइया' कहता है। अरे, क्या देखकर सो जाता है? यह जगत् क्या सोने योग्य है? मनुष्यजन्म मिला और सोया जाता होगा? मनुष्यजन्म मिला, अच्छा योग मिला, उच्च धर्म पुस्तकें पढ़ने का योग मिला,

उच्च आराधना मिली, वीतराग के दर्शन हुए और तू 'होइया' करके सो जाता है?

और फिर 'बेडरूम' बनाए है? अरे, 'बेडरूम' नहीं बनाते! वह तो एक रुम हो तो सबको साथ में सो जाना है और अलग बेडरूम तो संसारी जंजाल! यह तो 'बेडरूम' बनाकर पूरी रात संसार की जंजाल में पड़ा रहता है। फिर आत्मा की बात तो कहाँ से याद आएगी? 'बेडरूम' में आत्मा की बात याद आती होगी?

मैंने एक व्यक्ति से पूछा, 'क्या देखकर सो जाते हो?' तब उसने कहा, 'साढ़े दस बजे हैं, तो अब नहीं सोऊँगा?' 'अरे, कुछ कमाए बगैर सो गए? आज क्या कमाया वह कहो मुझे।' तब उसने कहा, 'मैं कुछ तो करता हूँ। वे तो कुछ भी नहीं करते'! दूसरों से पूछा, तब उन्होंने भी ऐसा ही कहा, कि 'वे नहीं करते, यह नहीं करता'। सभी ऐसा कहते हैं!

प्रश्नकर्ता : हाँ, ऐसा हिसाब लगाते हैं, खुद का हिसाब लगाने के बजाय।

दादाश्री : यह तो सभी *पोल* (कच्चा रखते) मारते हैं!

अत: पूरा ही जगत् शंका में है, कुछ अपवाद छोड़कर। क्योंकि आत्मा क्या है, उस पर शंका नहीं होती। संदेह रहा करता है कि, 'आत्मा ऐसा होगा या वैसा होगा, ऐसा होगा या वैसा होगा'। ऐसा संदेह होता ही रहता है! वह संदेह रहा करता है इसलिए फिर जगत् में तरह-तरह की दूसरी शंकाएँ खड़ी हो जाती हैं।

अक्रम की बलिहारी 'क्षायक समकित' की प्राप्ति

आत्मा प्राप्त होने से मोहनीय कर्म खत्म हो गया। मोहनीय कब तक है? 'मैं चंदूभाई हूँ' तभी तक। उसके बाद फिर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' हो गया तो फिर मोहनीय नहीं है। शुद्धात्मा भी *लक्ष* (जागृति) के रूप में रहना चाहिए। इसे सिर्फ बोलते रहने से कुछ नहीं बदलेगा। और अब इस ज्ञान से मोहनीय खत्म हुआ है। मोहनीय ही अंतराय का कारण है। वह खुद आत्मा से अलग हो गया, अंतराय पड़ा। तभी से कहो न, सारे अंतराय हैं, खुद के स्वरूप के अंतराय पड़े, तभी से सारे अंतराय पड़ते ही जाते हैं।

अब वह जो दर्शन मोहनीय है, वह तो स्थूल चीज़ है। दर्शन मोहनीय को मिथ्यात्व कहते हैं। मोहनीय, अंतराय, ज्ञानावरण और दर्शनावरण इन चारों की प्रबलता, इसी को मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्व से आगे बढ़े तो तीन पीसेज़ (भाग) हो जाते हैं। समकित प्राप्त होने से पहले आगे बढ़े तो उसके फल स्वरूप, तीन पीसेज़ हो जाते हैं। उसमें से मिथ्यात्व मोह होता है, मिश्रमोह होता है और सम्यक्त्व मोह होता है। इस तरह मोहनीय के तीन टुकड़े हो जाते हैं। अब मिथ्यात्व मोहनीय जब मंद हो जाता है, तब मिश्र मोहनीय में आता है। यह भी सच है और वह भी सच है। मोक्ष में जाने का रास्ता, ये सब भगवान के मंदिर वगैरह जो मार्ग हैं न, वे भी सच हैं और यह संसार भी सच है। शास्त्र भी सच हैं और अपना घर, बीवी-बच्चे, व्यापार भी सच हैं। दोनों जगह पर मोह के परिणाम हैं।

मिथ्यात्व मोहनीय और मिश्र मोहनीय के जाने के बाद उसे समकित होता है। जब क्रोध-मान-माया-लोभ, चारों ही चले जाते हैं, तब उसे समकित होता है। उपशम समकित होता है और उपशम समकित का मतलब *अर्धपुद्गल परावर्तन काल* (ब्रह्मांड के सारे *पुद्गलों* को स्पर्श करके,

भोगकर खत्म करने में जो समय (काल) व्यतीत होता है, उससे आधा काल) तक भटकता रहता है। उसके बाद बहुत समय बीत जाने पर क्षयोपक्षम में आता है। यह उपशम हो गया है, उसके क्षयोपक्षम का क्षायक होते-होते तो अर्ध *पुद्गल* परावर्तन अर्थात् तो बहुत काल की भटकन हो जाती है। क्षायक कब होता है कि जब सम्यक्त्व मोहनीय जाए तब। सम्यक्त्व मोहनीय को तो हिंदुस्तान में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है कि जिसे सम्यक्त्व मोहनीय हो। अगर वह हो जाए तब तो बहुत अच्छा काम हो जाता। सम्यक्त्व मोहनीय अर्थात् अन्य कोई चीज़ उसे याद नहीं आती। आत्मा कैसा होगा? आत्मा क्या होगा, किस तरह से जाना जा सकता है, किस तरह से प्राप्ति हो सकती है, सारा मोह आत्मा जानने के लिए ही, ऐसे कौन हैं यहाँ पर? पूरे दिन यही, अन्य कोई परिणाम ही नहीं। निरंतर उसी में। आत्मा कैसा होगा और कैसा नहीं, उसे कैसे जाना जा सकता है वगैरह इसी सोच में रहने वाले कितने लोग होंगे? लोगों को तो एक घंटे भी नहीं रहता, जबकि यह तो निरंतर रहता है, निरंतर।

और जिसे ऐसा निश्चित हो गया कि आत्मा 'यही' है और शंका उत्पन्न नहीं हुई तो सम्यक्त्व मोह नष्ट हो जाता है, उसे 'क्षायक समकित' हो जाता है। यानी अपना यह सम्यक्त्व मोह चला गया है। यह आत्मा है, ऐसा तय हो जाता है, नि:शंक भाव से, बिल्कुल भी शंका नहीं रहती। दादाजी जो बता रहे हैं, वही आत्मा है और अपना आत्मा प्रकट हो गया है। उसके बाद शंका के लिए कोई स्थान नहीं रहता। वर्ना इस जगत् में किसी का भी संदेह गया नहीं है।

अब तो संदेह गया, शंका गई, सबकुछ गया और आत्मा हाज़िर हो गया। फिर और क्या चाहिए? प्रकट चैतन्य हाज़िर हो गया। हम याद न करें, फिर भी अपने आप आ जाता है। फिर और क्या चाहिए? जिस दिन ज्ञान मिलता है, उस पहली रात का आनंद अभी भी याद आता है न? उस समय वे डिस्चार्ज तुरंत नहीं निकलते न? फिर डिस्चार्ज का उदय आया या डिस्चार्ज इकट्ठा हुआ तब फिर वह वापस उलझने लगता है। वह पद तो देखा है न? अर्थात् पहले घंटे में, जीतेन्द्रिय जिन हो गया। उसके बाद के एक घंटे में वह जित मोह जिन हो जाता है। जब तक वह मोह क्षय नहीं हो जाता, तब तक यह जित मोह जिन, उसके बाद क्षीण मोह जिन हो जाता है।

जहाँ पर नकद है, जहाँ पर खुद ही हाज़िर हो जाता है, आत्मा खुद ही हाज़िर हो जाता है, इस जगत् में कोई ऐसी चीज़ नहीं है कि जो निरंतर हाज़िर रह सके।

तीर्थंकरों ने पूरे प्रमाण दिए हैं न! आपको अनुभव होता है न, मैं कह रहा हूँ उस अनुसार? ज्ञानावरण, दर्शनावरण कैसा पद्धतिपूर्वक, क्रमपूर्वक कहा है! इसका क्या कारण है? सभी का मूल कारण, आठों (द्रव्य) कर्मों का मूल कारण दर्शनावरण है। पहले इस मूल कारण का छेदन होता है। उससे आपका पूरा ही दर्शनावरण छूट (चला) गया।

प्रश्नकर्ता : दर्शन मोहनीय पहले टूटा या दर्शनावरण पहले टूटा?

दादाश्री : वह मोह और वह आवरण, दोनों साथ में ही टूटते हैं। यानी कि पहले या बाद में नहीं, दोनों साथ में ही फ्रेक्चर होते हैं। एट ए टाइम सारा ही फ्रेक्चर हो जाता है, एक घंटे में।

दर्शनावरण पूरा टूट गया लेकिन अब क्या होता है? पहले वाले जो कर्म आते हैं न, वे

परेशान करते हैं उसे। इस दर्शन का लाभ नहीं लेने देते। वर्ना मेरी तरह आप भी देखकर बोलते लेकिन ये (आवरण) लाभ नहीं लेने देते। ये सब उलझा देते हैं।

प्रश्नकर्ता : अभी भी यह माल बहुत भरा हुआ लगता है।

दादाश्री : भरा हुआ ही है न, वे सभी आपको उलझाते हैं और हमें संयोग बहुत नहीं हैं और हमारे सभी संयोग ज्ञेय स्वरूप से हैं। आप में भी वे ज्ञेय स्वरूप से ही हैं लेकिन आपको ज्ञेय रहने ही नहीं देते न, ये सभी (कर्म) बारी-बारी से आते हैं इसलिए। क्योंकि अक्रम है न!

यह तो अक्रम ज्ञान की बलिहारी है कि ऐसा कुछ उदय आया है। ऐसी अद्‌भुत बात तो सुनी ही नहीं होगी न! दर्शनावरण का एक अंश भी कम होना बहुत मुश्किल है। इस काल में बल्कि बढ़ता ही रहता है, वहाँ पर कम कैसे हो सकता है? दो प्रतिशत कम होता है और चालीस प्रतिशत उत्पन्न होता है।

ज्ञानी पुरुष के चरणों में छूटता है दर्शनमोह

दर्शन मोह तो उसे कहते हैं कि, जो सच नहीं है उसे भी सच मनवाता है। जगत् क्या कहता है, जो 'नहीं है', उसी को 'है', ऐसा मनवाता है। लेकिन भाई, 'नहीं है', ऐसा कैसे कह सकते हैं, दिखाई देता है न, खुले आम? लेकिन वास्तव में आप चंदूभाई नहीं हो, वास्तव में आप नहीं हो फिर भी आपसे मनवाते हैं कि 'नहीं, आप चंदूभाई ही हो', वह दर्शन मोह है। फिर, आप खुद यह शरीर नहीं हो फिर भी, ऐसा कहते हैं 'यह शरीर ही मैं हूँ'।

प्रश्नकर्ता : उसका मालिकीपन रखते हैं।

दादाश्री : जहाँ पर 'मैं हूँ' आया तो वहाँ पर मालिकी है ही, इसी को कहते हैं दर्शन मोह। 'मैं हूँ' छूट जाए तो मालिकीपन छूट जाएगा। यह दर्शन मोह छूट जाएगा तभी मनुष्य इस जगत् से छूट सकता है, वर्ना कभी भी मुक्ति नहीं हो सकती। जो हम से मिलते हैं, हम उनसे कहते हैं कि 'आप चंदूभाई नहीं हो'। तब कहते हैं, 'मैं ही चंदूभाई हूँ। आप ऐसा कैसा कह रहे हैं?' 'अरे भाई, नहीं हो आप चंदूभाई। चंदूभाई तो आपका नाम है।' तब उसे शंका होती है, 'बात तो सही है। नाम तो मेरा चंदूभाई ही है तो फिर मैं कौन हूँ?' उसके बाद फिर दादा उसे दिखाते हैं, तब पहला दर्शन मोह छूट जाता है। जो अँधेपन की पट्टियाँ बाँधकर घूम रहा था, वही अब देखने लगता है। वह दर्शन मोह टूटा। उसके बाद दिखने लगा। तब लोग कहते हैं, 'क्यों इतना सब पहना हुआ है आपने? इतना सारा मोह?' आपको यह पता नहीं चलता कि यह मोह है लेकिन यह चारित्र मोह है। यानी पहले जो मोह भाव किए थे, उसी का यह फल आया है। यह इफेक्ट है, नॉट कॉज़। कॉज़ेज़ बंद हो चुके हैं। जिसके कॉज़ बंद हो चुके हैं, उसका मोक्ष हो गया।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन दर्शन मोह कैसे छूट सकता है?

दादाश्री : और कोई रास्ता नहीं है, जब ज्ञानी पुरुष छुड़वा देते हैं, तब। 'ज्ञानी' के चरणों में पड़े रहने के सिवा और कोई चारा नहीं है। जगत् का दर्शन अनंत मोहनीय वाला है और उसमें से कोई निकल नहीं सकता। दर्शन मोह का अर्थ क्या है? यों जो सब देख रहा था उसके बजाय पीछे की तरफ देखने लगता है। उस दृष्टि को बदल देते हैं, ज्ञानी पुरुष। अपने आप नहीं बदल सकती। यह सांसारिक दृष्टि है और पीछे

आत्मदृष्टि है। वे दृष्टि को आत्मा की ओर कर देते हैं। उसके बाद उसे समझ में आ जाता है कि 'मैं यह हूँ'।

खुद की गलत श्रद्धा पर शंका करवाए, वे 'ज्ञानी'

'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसी उल्टी श्रद्धा बैठी हुई है उसे कितना भी भुलाना चाहे फिर भी क्या उसे भूल सकता है? उसका तो 'ज्ञानी' के माध्यम से विधिवत तार कट जाना चाहिए। सूक्ष्म तार, श्रद्धा के तार बंधे होते हैं। जब वे 'रोंग बिलीफें' टूट जाएँगी और 'राइट बिलीफें' हो जाएँगी तब काम होगा! 'राइट बिलीफ' को 'सम्यक् दर्शन' कहा गया है। 'रोंग बिलीफ' को 'मिथ्यात्व' कहा गया है।

'मैं कौन हूँ' उस ज्ञान पर वहम हो गया कि, 'वास्तव में मैं यह नहीं हूँ'। आज तक जाने हुए ज्ञान पर वहम होने लगे, तभी से हम (दादाश्री) समझ जाते हैं कि वह ज्ञान खत्म होने को है! जिस ज्ञान पर शंका होती है, वह ज्ञान खत्म हो जाता है। यथार्थ ज्ञान पर कभी शंका नहीं होती। यानी सामने शंका हो, ऐसा ज्ञान होना चाहिए न? शायद कभी आवरण के कारण समझ में नहीं आए, तो वह बात अलग है। बाकी, सच्चे ज्ञान पर शंका नहीं होती, क्योंकि शरीर में आत्मा है न!

एक व्यक्ति तो मुझसे ऐसा कहने लगा, 'दादा, मुझे कभी भी अपने आप पर शंका नहीं हुई, आज मुझे शंका हो गई'। मैंने कहा, 'मैं चंदूभाई हूँ, आपके उस ज्ञान पर वास्तव में वहम हुआ न?' वहम अर्थात् 'क्रेक' पड़ गया पूरे में। यानी 'मैं चंदूभाई हूँ' उस ज्ञान पर भी 'क्रेक' पड़ जाना चाहिए न? शंका होनी चाहिए न! और सच्चे ज्ञान में नि:शंक रहना है। ये तो, झूठे ज्ञान में नि:शंक रहे हैं, शंका रहित रहे हैं!

जहाँ शंका करनी चाहिए, वहाँ जग नि:शंक

और शंका करने की एक ही जगह है कि ''क्या मैं वास्तव में 'चंदूभाई' हूँ?'' इतनी ही शंका करते रहना है। वह आत्महत्या नहीं है।

प्रश्नकर्ता : 'मैं चंदूभाई हूँ' उस बात पर ही शंका हो...

दादाश्री : तब तो काम ही हो जाएगा! वह शंका तो किसी को होती ही नहीं न! मैं पूछता रहता हूँ तब भी शंका नहीं होती। 'मैं चंदू ही हूँ, मैं चंदू ही हूँ' कहता है। वह शंका होती ही नहीं है, नहीं क्या?

फिर जब मैं बार-बार कहता हूँ तब कुछ शंका होती है और उसके बाद सोचता है कि 'ये दादा कह रहे हैं वह भी सही है, बात में कुछ तथ्य है'। बाकी, अपने आप तो किसी को भी शंका नहीं होती।

प्रश्नकर्ता : वैसी शंका हो, तभी आगे बढ़ता है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। यह शंका शब्द इसी के लिए है। 'क्या मैं वास्तव में चंदूभाई हूँ?' वह शंका 'हेल्प' करती है। दूसरी सभी शंकाएँ तो आत्महत्या करवाती हैं। 'क्या मैं वास्तव में चंदूभाई हूँ? और ये सब कहते हैं कि इनका बेटा हूँ। क्या वास्तव में हूँ?' यह शंका हुई तब काम का!

मालिकीपना नहीं, वहाँ गुनाह नहीं

अब, 'मैं चंदूभाई हूँ' उस ज्ञान पर तो आपको शंका हो गई न या नहीं हुई?

प्रश्नकर्ता : शंका हो गई है। यानी कि मैं आत्मारूप हूँ और चंदूभाई परसत्ता है, पड़ोसी है।

दादाश्री : हाँ, चंदूभाई पड़ोसी है। अब एक 'प्लॉट' हो, वह जब तक उन दो भाइयों के नाम हो, तब तक पूरे 'प्लॉट' में जो कुछ होता है, वह दोनों का नुकसान कहलाता है। लेकिन फिर अगर दोनों में बँटवारा कर दें कि इस तरफ का चंदूभाई का और उस तरफ का दूसरे भाई का। तो बँटवारा हो जाने के बाद दूसरे भाग के लिए आप ज़िम्मेदार नहीं हो। इसी प्रकार से आत्मा और अनात्मा का बँटवारा हुआ है। उसमें बीच में 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' (भेदरेखा) मैंने डाली हुई है, 'एक्ज़ेक्ट' (यथार्थ) डाली हुई है। ऐसा विज्ञान इस काल में उत्पन्न हुआ है, उसका लाभ हम सब को उठा लेना है।

आत्मा और अनात्मा, दोनों के बीच में 'लाइन ऑफ डिमार्केशन' डाल दी इसलिए अब 'चंदूभाई' के साथ 'आपका' संबंध पड़ोसी जैसा रहा। अब पड़ोसी जो गुनाह करे, उसके गुनहगार आप नहीं हो। मालिकीपना नहीं है इसलिए गुनहगार भी नहीं है। मालिकीपना हो तभी तक गुनाह माना जाता है। मालिकीपना गया कि गुनाह नहीं रहता।

हम किसी से पूछें कि, 'आप नीचे देखकर क्यों चल रहे हो?' तब वे कहेंगे, 'नहीं देखेंगे तो पैर के नीचे जीव-जंतु कुचल जाएँगे न'! 'तो क्या ये पैर आपके हैं?' ऐसा पूछें, तो कहेंगे, 'हाँ, भाई, पैर तो मेरा ही है न'! ऐसा कहते हैं या नहीं कहते? यानी 'ये पैर आपका, तो पैर के नीचे कोई जीव कुचला गया तो उसके जोखिमदार आप' हो! और इस 'ज्ञान' के बाद आपको तो 'यह देह मेरी नहीं है' ऐसा ज्ञान हाज़िर रहता है। यानी कि आपने मालिकीपना छोड़ दिया है। यहाँ पर यह 'ज्ञान' देते समय मैं सारा मालिकीपना ले लेता हूँ। अत: उसके बाद यदि आप मालिकीपना वापस ले लोगे तो उसकी जोखिमदारी आएगी। पर यदि आप मालिकीपना वापस नहीं लोगे न, तो 'एक्ज़ेक्ट' रहेगा। निरंतर भगवान महावीर जैसी दशा में रखे, ऐसा यह विज्ञान है!

यहाँ धूल उड़ रही हो न, तो सामने का नहीं दिखाई देता। इसी प्रकार कर्म के जंजाल के कारण सामने का दिखाई नहीं देता और उलझन में डाल देता है। लेकिन यदि ऐसी जागृति रहे कि 'मैं तो शुद्धात्मा हूँ' तो वह जंजाल खत्म हो जाएगा। भगवान महावीर जैसी दशा रहे, ऐसे ये पाँच वाक्य (पाँच आज्ञा) दिए हैं आपको!

शुद्धता बरते इसलिए, 'शुद्धात्मा' कहो

प्रश्नकर्ता : आपने शुद्धात्मा किसलिए कहा? सिर्फ आत्मा ही क्यों नहीं कहा? आत्मा भी चेतन तो है ही न?

दादाश्री : शुद्धात्मा अर्थात् शुद्ध चेतन ही। शुद्ध इसलिए कहना है कि पहले मन में ऐसा लगता था कि 'मैं पापी हूँ, मैं ऐसा नालायक हूँ, मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हूँ'। ऐसे तरह-तरह के खुद पर जो आरोप थे, वे सभी आरोप निकल गए। शुद्धात्मा के बजाय सिर्फ 'आत्मा' कहेंगे तो खुद की शुद्धता का भान भूल जाएगा, निर्लेपता का भान चला जाएगा। इसलिए 'शुद्धात्मा' कहा है।

प्रश्नकर्ता : तो शुद्धात्मा का मर्म क्या है?

दादाश्री : 'शुद्धात्मा' का मर्म यह है कि वह असंग है, निर्लेप है, जब कि 'आत्मा' ऐसा नहीं है। 'आत्मा' लेपित है और 'शुद्धात्मा', वह तो परमात्मा है। सभी धर्म वाले कहते हैं न, 'मेरा आत्मा पापी है', फिर भी शुद्धात्मा को कोई परेशानी नहीं है।

शुद्धात्मा यही सूचित करता है कि हम अब निर्लेप हो गए, पाप गए सभी। यानी शुद्ध

उपयोग के कारण 'शुद्धात्मा' कहा है। वर्ना 'आत्मा' वाले को तो शुद्ध उपयोग होता ही नहीं। आत्मा तो, सभी आत्मा ही हैं न! लेकिन जो शुद्ध उपयोगी होता है, उसे शुद्धात्मा कहा जाता है। आत्मा तो चार प्रकार के हैं, अशुद्ध उपयोगी, अशुभ उपयोगी, शुभ उपयोगी और शुद्ध उपयोगी, ऐसे सब आत्मा हैं। इसलिए अगर सिर्फ 'आत्मा' बोलेंगे तो उसमें कौन-सा आत्मा? तब कहे, 'शुद्धात्मा'। यानी कि शुद्ध उपयोगी, वह शुद्धात्मा होता है। अब उपयोग फिर शुद्ध रखना है। उपयोग शुद्ध रखने के लिए शुद्धात्मा है, नहीं तो उपयोग शुद्ध रहेगा नहीं न!

एक व्यक्ति ने पूछा कि, 'दादा, बाकी सब जगह 'आत्मा' ही कहलवाते हैं और सिर्फ आप ही 'शुद्धात्मा' कहलवाते हैं, ऐसा क्यों?' मैंने कहा कि, 'वे जिसे आत्मा कहते हैं न, वह आत्मा ही नहीं है और हम शुद्धात्मा कहते हैं, इसका कारण अलग है'। हम क्या कहते हैं, कि तुझे एक बार 'रियलाइज़' करवा दिया कि तू शुद्धात्मा है और ये चंदूभाई अलग है, ऐसा तुझे बुद्धि से भी समझ में आ गया। अब चंदूभाई से बहुत ख़राब काम हो गया, लोग निंदा करें, ऐसा काम हो गया, उस समय तुझे 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसा *लक्ष* चूकना नहीं चाहिए। 'मैं अशुद्ध हूँ' ऐसा कभी भी मत मानना, ऐसा कहने के लिए 'शुद्धात्मा' कहना पड़ता है। 'तू अशुद्ध नहीं हुआ है' इसलिए कहना पड़ता है। हमने जो शुद्धात्मापद दिया है, वह शुद्धात्मापद-शुद्धपद, फिर बदलता ही नहीं, इसलिए शुद्ध शब्द रखा है। अशुद्ध तो, यह देह है इसलिए अशुद्धि तो होती ही रहेगी। किसी में अधिक अशुद्धि होती है, तो किसी में कम अशुद्धि होती है, ऐसा तो होता ही रहेगा। और उसका फिर उसके खुद के मन में घुस जाता है कि 'मुझे तो दादा ने शुद्ध बनाया फिर भी यह अशुद्धि तो अभी तक बाकी है' और ऐसा यदि घुस गया तो फिर बिगड़ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : वहाँ शुद्धपन को किस तरह से जाग्रत रखना है?

दादाश्री : शुद्ध ही हूँ, तू खुद शुद्ध ही है, यह जो हो गया, वह तो गया और वह व्यस्थित के ताबे में था। लेकिन उस समय शुद्धपन नहीं रहता और शंका होती है न। इसलिए हमने शुद्धात्मा (शब्द) दिया है कि चाहे कैसी भी स्थिति हो, तू शुद्ध ही है, ऐसा मानना। अतः सबकुछ समझकर तू शुद्धात्मा बना है। यों ही ऐसा गप्प नहीं मारी है।

उस भूल का पता लगाना है...

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं न, कि तू कौन है? तब मुझे 'मैं शुद्धात्मा हूँ,' उस पर शंका रहती है।

दादाश्री : 'मैं शुद्धात्मा हूँ' आपको उसमें शंका रहती है, तो जो वह शंका करता है, वही शुद्धात्मा है। इसलिए 'आपको' यहाँ नहीं बैठना है, उस जगह पर बैठना है अब। कौन शंका कर रहा है, वह ढूँढ निकालना है कि यह तो अपनी ही भूल है।

शंका जाए तो हल आ जाए। अब, शंका का खत्म हो जाना, वह तो खुद के हिसाब में होना चाहिए न? सामने वाले की शंका खत्म हो गई, इसलिए क्या अपनी शंका भी खत्म हो गई? क्योंकि सभी को एक सरीखी शंका नहीं होती। इसलिए खुद अपने आपसे पूछना चाहिए कि, 'किस-किस बारे में शंका है?' तब कहेगा, 'नहीं, अब कोई शंका नहीं है'। और जिसे अभी कुछ-कुछ शंका हो, वह फिर यहाँ थोड़े समय तक बैठा रहे और हमसे पूछे-करे तो फिर वह शंका चली जाएगी और शंका गई तो समझो हल आ गया।

वह जाना हुआ तो शंका करवाता है

शंका कब होती है? बहुत पढ़ते रहे हों न, वह सारा आगे-आगे प्रति स्पंदन डालता रहता है। अत: मनुष्य वहाँ पर उलझ जाता है और उलझने से तो संदेह खड़े होने लगते हैं, शंका होने लगती है। वे शंकाएँ ही इस संसार से बाहर नहीं निकलने देतीं। बहुत काल से शास्त्र का परिचय हो, तब फिर आपको अंदर शंका खड़ी होती है। यानी कि जितना जानता है, वह तो बल्कि उतना ही अधिक खटकता है। उस जाने हुए को भगवान ने 'ओवरवाइज़पना' कहा है।

यह तो जो विशेष जान लिया है, उसका प्रभाव है! उससे धक्के लगते रहते हैं। वह जान लिया है न, इसलिए। इसलिए हमने कहा है न, कि 'मैं कुछ भी नहीं जानता' ऐसा करके फ्रेक्चर कर दो न, सारा माल! अभी तक जो भी जाना हुआ था, वह सारा गलत था। जिस जानकारी ने अपनी हेल्प नहीं की, क्रोध-मान-माया-लोभ गए नहीं, जिसे जानने से आत्मा प्राप्त नहीं हुआ, तब फिर उस जाने हुए का अर्थ ही क्या? और जिसे जानने से आत्मा प्राप्त हुआ है तब फिर और कुछ जानने की ज़रूरत नहीं है। यह अक्रम विज्ञान है, वह क्रमिक है। अत: यदि किसी को ऐसा लगता है कि उन्हें प्राप्ति हो गई है तो मिक्स्चर करने की ज़रूरत नहीं है। एक के अंदर दूसरा मिक्स्चर करने से फायदा नहीं होगा। जिस प्रकार की दवाई आप पीते हों, वही पीते रहना अच्छा है। वापस दूसरा मिक्स्चर करेंगे तो बल्कि नई मुश्किलें खड़ी हो जाएँगी। तो मिक्स्चर क्यों करना है आपको? कृपालुदेव ने क्या कहा है कि, 'जिस रास्ते, जिससे अपना संसार मल चला जाए, उसी रास्ते का तू सेवन करना'। तो उसका सेवन करना है। क्योंकि आपको तो इतना ही देखना है न कि मल जाए! अपना और काम भी क्या है?

यानी जितने शंकाशील हैं न, उन्हें यह संसार छोड़ता नहीं है। जब तक किंचित् मात्र भी कोई भी संशय, संमोह या शंका हो, तब तक यह संसार उसे मुक्त नहीं करता। उसी से संसार बंधा हुआ है। शंका होने लगे तब आपका काम नहीं हो पाता। इसके बजाय अनपढ़ लोग अच्छे। ये सभी शास्त्रों के जानकार शंकाशील, संदेह में फँसे हुए हैं। इनके बजाय तो अपने 'ज्ञान' लिए हुए किसी महात्मा को शंका उत्पन्न ही नहीं हुई। क्योंकि ऐसे अधिक शास्त्र पढ़े हों तभी शंका होती है न! अत: जो नि:शंक हो जाता है, उसका आत्मा निरंतर परमानंद देता है।

बाकी, यह जगत् शंका से ही फँसा हुआ है न! शायद ही कभी अपने 'ज्ञान' लिए हुए महात्मा को एक क्षण के लिए भी आत्मा संबंधी शंका हुई होगी! ऐसा तो हुआ ही नहीं, सुना ही नहीं न! यहाँ तो शंका जैसी चीज़ ही नहीं सुनी।

प्रश्नकर्ता : जिसने पहले कभी ऐसी चीज़ सुनी ही नहीं हो, उन्हें शंका नहीं होती, लेकिन जिसने सुनी हो, उसे ऐसा लगता है कि यह सच है या वह सच है?

दादाश्री : ऐसा है न, सुना हुआ हो, फिर भी शंका नहीं होती उसका क्या कारण है? यह 'ज्ञान' लेने के बाद उसे खुद को अंदर ऐसा अनुभव हो गया कि मेरा आत्मा निरंतर रहता है कभी भी जाता ही नहीं, रात को दो बजे जब मैं जागता हूँ उससे पहले तो वह हाज़िर हो जाता है। तो ऐसा तो इस 'वर्ल्ड' में किसी भी जगह पर हो सके, ऐसा है ही नहीं, आत्मा अपने आप हाज़िर हो जाए, ऐसा होता ही नहीं। यह तो अनुभव कहलाता है। आत्मा प्राप्त हो जाए, उसे अनुभव कहते हैं, आत्मा का *लक्ष* बैठ गया, उसे अनुभव कहते

हैं। क्योंकि खुद के जागने से पहले तो वह आत्मा हाज़िर हो जाता है।

अत: जिसकी शंका गई उसे संपूर्ण आत्मा प्राप्त हो गया। वर्ना 'आत्मा कैसा है' किसी का वह संदेह जा सके, ऐसा है ही नहीं। 'आत्मा है' वह संदेह शायद चला जाए, लेकिन 'आत्मा कैसा है' ऐसा वह संदेह नहीं जाता। वह चीज़ बहुत गहरी है।

पुस्तक से नहीं छूटता संदेह

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, यों तो देहधारी मनुष्य के माध्यम से ही यह प्रक्रिया होती है न? देहधारी मनुष्य में ही भगवान प्रकट होते हैं और तभी संदेह छूटता है न? पुस्तक द्वारा संदेह नहीं छूटता न?

दादाश्री : पुस्तक में कुछ भी नहीं होता और कुछ नहीं मिलता। पुस्तक में तो लिखा होता है कि 'शक्कर मीठी है', उससे क्या अपना मुँह मीठा हो गया? पुस्तक में 'शक्कर मीठी है' ऐसा लिखा है, लेकिन उससे हमें क्या फायदा हुआ? मुँह में रखेंगे तो मीठी लगेगी न?

प्रश्नकर्ता : यानी ऐसे देहधारी मनुष्य, जिनमें भगवान प्रकट हुए हों, वे मिलते नहीं है और पुस्तकें कुछ काम करती नहीं, तो क्या फिर घूमते रहें?

दादाश्री : हाँ, भटकना ही है बस।

प्रश्नकर्ता : इस दुकान से उस दुकान और उस दुकान से और किसी दुकान पर।

दादाश्री : हाँ, अलग-अलग दुकानों पर ही घूमता रहता है।

प्रश्नकर्ता : और जितनी दुकानों पर घूमते जाते हैं, वैसे-वैसे नकली माल बढ़ता जाता है।

दादाश्री : हाँ, बढ़ता जाता है। और 'यहाँ से मिलेगा या वहाँ मिलेगा?' ऐसे विकल्प खड़े होते रहते हैं। वह तो जब अंतिम दुकान मिल जाए तब निबेड़ा आता है और उसमें भी जब सभी बातों में संदेह चला जाए तब हल आता है।

आप खुद भी भगवान हो, लेकिन आपको उसका *भान* (अनुभूति) नहीं है। खुद के मन में ऐसा तय हो जाए कि, 'मैं भगवान हूँ लेकिन मुझे उस पद का पता नहीं चल पा रहा है'। ऐसा यदि तय हो जाए तब तो फिर हर्ज नहीं है। यह तो, इसे तो शंका है कि, 'हूँ या नहीं, हूँ या नहीं, हूँ या नहीं...' शंका कैसी? तू भगवान ही है! तेरा खुद का *भान* चला गया है! भगवान प्रत्येक जीव में विराजमान हैं, चेतन के रूप में। इस बात का *भान* ही नहीं है। वह चेतन, वही परमेश्वर है! 'शुद्ध चेतन' यानी शुद्धात्मा, वही परमात्मा!

ज्ञान के बाद चार्ज बंद

प्रश्नकर्ता : अगर किसी ने शुद्धात्मा का ज्ञान लिया हो और उसे कोई थप्पड़ मारे और वह वापस थप्पड़ मार दे, तो फिर उस पर ज्ञान का असर नहीं हुआ, ऐसा समझें या उसका शुद्धात्मापन कच्चा है, ऐसा समझें?

दादाश्री : शुद्धात्मा का ज्ञान कच्चा रह गया, ऐसा नहीं कह सकते।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उसने किसलिए थप्पड़ मारा वापस?

दादाश्री : जब थप्पड़ मारा न, उस समय 'वह' जुदा ही होता है। और 'उसके' मन में पछतावा होता है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा क्यों हो रहा है?' यह 'ज्ञान' ऐसा है कि अपनी खुद की एक भी भूल हुई हो तो तुरन्त ही

पता चल जाता है और भूल हुई ऐसा पता चले न, तब पछतावा होता ही है।

और यह जो हुआ, उसमें ज्ञान का और उसका कोई लेना-देना नहीं है। ये सभी उसके 'डिस्चार्ज' भाव हैं।

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा हो चुका हो, यह ज्ञान लिया हुआ हो और 'परफेक्ट' (आदर्श) हो, तो वह हमें उसके आचरण से कैसे पता चलेगा?

दादाश्री : उसमें 'इगोइज़म' (अहंकार) नहीं होता, कर्तापद खत्म हो चुका होता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा मानो न, कि 'मैं नहीं कर रहा हूँ' ऐसा उसे बरतता है, तो फिर इनको मैं थप्पड़ मारूँ और मैं कहूँ कि 'मैंने नहीं मारा, शरीर ने मारा है। आत्मा ने नहीं मारा' तो?

दादाश्री : ऐसा कह ही नहीं सकते न! 'शरीर ने मारा है' ऐसा नहीं बोल सकते, वह तो जोखिम है। 'शरीर ने मारा है, आत्मा ने नहीं मारा' ऐसा कहे, ऐसा बचाव करे तो उसे हम कहेंगे, 'खड़े रहो, शरीर में मुझे सुई चुभोने दो'। तो 'शरीर ने मारा है' ऐसा नहीं बोलेगा।

ऐसा है, मारना तो एक प्रकार का 'डिस्चार्ज' भाव है। इस 'ज्ञान' के बाद उसका 'खुद' का चार्ज करना बंद हो जाता है, फिर 'डिस्चार्ज' बाकी रहता है। उसका जोखिम नहीं रहता। 'कर्ता मिटे तो छूटे कर्म।' कर्तापन उसका छूट गया है। खुद कर्ता है ही नहीं, 'व्यवस्थित' कर्ता है। कर्ताभाव छुटने पर ही शुद्धात्मा का *लक्ष* बैठता है।

'शुद्धात्मा' सिर्फ चंदु को 'देखते' रहता है

शुद्धात्मा का ज्ञान दिया है इसलिए खुद का *लक्ष* बैठ गया और कहा है कि 'व्यवस्थित' चलाता है उसे देखते रहो, बस! इतना ही विज्ञान है अपना। यह 'व्यवस्थित' जो चलाता है, 'चंदूभाई' को, उसे 'तू' देखता रह। इतना ही कहते हैं न आपको!

प्रश्नकर्ता : व्यवस्थित पर सबकुछ डाल देना हो, तो फिर हमें कुछ करने को रहता ही नहीं न?

दादाश्री : आपको कुछ करना ही नहीं है। आपको देखते ही रहना है कि, 'चंदूभाई क्या कर रहे हैं?' चंदूभाई को करना है, आपको कुछ नहीं करना है। चंदूभाई तो व्यवस्थित के ताबे में करते रहेंगे। जैसा व्यवस्थित समझाएगा न, वैसा करते रहेंगे। यानी आपको तो देखते रहना है। 'चंदूभाई क्या करते हैं', वह देखते रहना है। ऐसा हो पाएगा या नहीं? चंदूभाई का *ऊपरी* बनना हो पाएगा आपसे?

चंदूभाई से कोई दोष हो जाए। तब भी आप शुद्ध ही हो। दोष, पूर्व कर्म का हिसाब है। अब खुद का हिसाब है तो आपको उसका *निकाल* कर देना है। उस दोष से सामने वाले को दुःख हो जाए तो आप चंदूभाई से कहना कि, 'भाई, पश्चाताप करो। पछतावा करो'। 'फिर से नहीं करूँगा', ऐसा निश्चय करो।

चंदूभाई से कुछ खराब काम हो जाए, किसी जगह पर तो आपको घबराहट नहीं होनी चाहिए। क्योंकि वह तो व्यवस्थित शक्ति ने किया है और आप तो शुद्धात्मा हो, शुद्ध ही हो। अब फिर से आप लेपायमान हो ही नहीं सकते, असंग ही हो! शुद्धात्मा खुद स्वभाव से ही 'असंग' है। आत्मा 'असंग' है। यदि तू 'असंग' है तो तुझे रंग नहीं छू सकता, 'चंदूभाई' को छूता है। 'तुझे' तो 'जानते' रहना है!

'आत्मा' के प्रति शंका किसे?

प्रश्नकर्ता : श्रीमद् राजचंद्र जी ने आत्मसिद्धि में लिखा है कि,

''आत्मानी शंका करे, आत्मा 'पोते' आप!
शंकानो करनार ते, अचरज एह अमाप।''

इसमें आत्मा के बारे में शंका आत्मा करता है या (अहंकार), बुद्धि करती हैं?

दादाश्री : यह आत्मा के बारे में शंका आत्मा करता है, वह बुद्धि नहीं करती। आत्मा, यानी जो अभी आपका माना हुआ आत्मा है, वह और मूल आत्मा, वे दोनों अलग आत्मा हैं। आपका माना हुआ आत्मा बुद्धि सहित है। अहंकार, बुद्धि सभी साथ में मिलकर मूल आत्मा के बारे में शंका करते हैं। क्या शंका करते हैं, कि 'मूल आत्मा नहीं है। ऐसा कुछ लगता नहीं है'। उसे शंका होती है कि ऐसा हो सकता है या क्या?

प्रश्नकर्ता : यानी बुद्धि के उपरांत जो आत्मा है वह उसके साथ ही जुड़ा हुआ है।

दादाश्री : यह जिसे आप आत्मा मानते हो, या फिर यह जगत् किसे आत्मा मानता है? 'मैं चंदूभाई और बुद्धि मेरी, अहंकार सारा मेरा और मैं ही यह आत्मा हूँ और इस आत्मा को मुझे शुद्ध करना है', ऐसा मानते हैं। उन्हें ऐसा पता नहीं हैं कि आत्मा तो शुद्ध है ही और यह रूपक खड़ा हो गया है। यानी यह खुद, अहंकार-बुद्धि है उसमें, वे शंका करते हैं। सिर्फ बुद्धि शंका नहीं करती। बुद्धि अहंकार सहित शंका करती है। यानी वह 'खुद' हुआ।

''आत्मानी शंका करे, आत्मा 'पोते' आप!''

'खुद' आत्मा है और वह 'खुद' अपने आप पर शंका करता है। यानी 'उसके' अलावा दूसरा कौन शंका कर सकता है? वह शंका क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं करते हैं, न ही मन करता है, न ही बुद्धि करती है। आत्मा ही आत्मा पर शंका करता है, यह आश्चर्य है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि यह तो इतना अधिक अज्ञान फैल गया है कि खुद खुद पर शंका करने लगा है, कि 'मैं हूँ या नहीं?' ऐसा कहना चाहते हैं। कृपालुदेव का यह बहुत अच्छा वाक्य है, लेकिन यदि समझे तो!

प्रश्नकर्ता : शंका होना, वह क्या प्रतिष्ठित आत्मा का काम है?

दादाश्री : इसमें मूल आत्मा को शंका होती ही नहीं। और प्रतिष्ठित आत्मा तो शंकाशील ही है न! और वह आपने जैसी प्रतिष्ठा की है, हम मूर्ति में प्रतिष्ठा करते हैं, तो जैसी प्रतिष्ठा करते हैं, वह वैसा ही फल देती है। उसी तरह यह भी मूर्ति में प्रतिष्ठा की है। उन मूर्तियों में और इसमें फर्क ही नहीं है। इसमें जैसी प्रतिष्ठा की है, यह सिर्फ वैसा ही फल देगी। यदि प्रतिष्ठा अच्छी की है, तो अच्छा फल देगी।

प्रश्नकर्ता : यानी प्रतिष्ठित आत्मा शुद्धात्मा की शंका करता है?

दादाश्री : हाँ, प्रतिष्ठित आत्मा। मैंने प्रतिष्ठित आत्मा नाम दिया है। बाकी, यों इन लोगों ने 'व्यवहार आत्मा' कहा है। जिसे तू अभी आत्मा मान रहा है वह व्यवहारिक आत्मा है, ऐसा कहा है। लेकिन व्यवहारिक आत्मा कहने से क्या होता है, कि लोगों को वह समझ में नहीं आता। लेकिन इसे फिर से उत्पन्न करने वाले 'आप' ही हो, प्रतिष्ठा करते हो इसलिए यह उत्पन्न हो जाता है। 'मैं चंदूभाई हूँ, मैं चंदूभाई ही हूँ' करते रहोगे तो फिर से आत्मा तैयार हो रहा है आपका, दूसरी प्रतिष्ठा हो रही है। मूर्ति स्वरूप मानते हो इसलिए मूर्ति में प्रतिष्ठा हुई, इसलिए मूर्ति का जन्म

होगा। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' तो (नयी प्रतिष्ठा) खत्म हो जाएगी। 'स्वरूप ज्ञान' के बाद नया 'प्रतिष्ठित आत्मा' नहीं बनता और पुराना 'इग्ज़ॉस्ट' (खत्म) होता रहता है!

शंका, तब तक दोष

'इस' ज्ञान के बाद खुद शुद्धात्मा हो गया। अब दरअसल शुद्धात्मा समझ में आए तो किसी भी प्रकार की हिंसा या कुछ भी अशुभ करे, वह खुद के गुणधर्म में है ही नहीं। उसे शुद्धात्मा का लक्ष पूरापूरा है। परन्तु जब तक अभी भी खुद को शंका होती है कि मुझे दोष लगा होगा! जीव मुझसे कुचला गया और मुझे दोष लगा है, ऐसी शंका होती है, तब तक सुबह पहले खुद निश्चय करके निकलना, 'किसी जीव को मन-वचन-काया से किंचित् मात्र दु:ख न हो', ऐसा पाँच बार बोलकर निकलो, ऐसा 'आपको' 'चंदूभाई' से बुलवाना है। अत: आपको ऐसा ज़रा कहना है कि चंदूभाई, बोलो, सुबह पहले उठते ही, 'मन-वचन-काया से किसी भी जीव को किंचित् मात्र दु:ख न हो, वह हमारी दृढ़ प्रतिज्ञा है।' और ऐसा 'दादा भगवान' की साक्षी में बोलकर निकले कि फिर सारी जिम्मेदारी 'दादा भगवान' की।

और यदि शंका न होती हो तो उसे कोई हर्ज नहीं। हमें शंका होती नहीं और आपको शंका होती है, वह स्वाभाविक है। क्योंकि आपको तो यह दिया हुआ ज्ञान है। एक मनुष्य ने लक्ष्मी खुद कमाई और इकट्ठी की हुई हो और एक मनुष्य को लक्ष्मी दी हुई हो, उन दोनों के व्यवहार में बहुत फर्क होता है।

वास्तव में ज्ञानी पुरुष ने जो आत्मा जाना है न, वह आत्मा तो किसी को किंचित् मात्र भी दु:ख न दे, ऐसा है और कोई उसे किंचित् मात्र दु:ख न दे, ऐसा वह आत्मा है। वास्तव में मूल आत्मा वैसा है।

परपरिणाम खत्म होंगे, अपने आप

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन अभी भी क्रोध हो जाता है न, तब शंका हो जाती है कि क्या मेरा ज्ञान बिगड़ गया?

दादाश्री : आपके इस ज्ञान के बाद में ये सारे परिणाम इतने बदल गए हैं, इनमें से एक भी यदि बदला हो तो भी जगत् के लोग कच्चे नहीं है, इतने पक्के है यह जगत् के लोग। यदि एक ही अनुभव हो गया हो न, एक ही! उसमें से चिंता बंद हो गई, वहाँ तक का यदि बंद हो गया हो तो फिर रुकेगा नहीं। ये तो कितने सारे बदलाव हो गए हैं! *लक्ष* बैठा, चिंता खत्म हो गई, फलाना खत्म हो गया, कितना सारा! परिणामों में तो चाहे जितना क्रोध हो फिर भी आपको देखते रहना है। 'ओहोहो! चंदूभाई, आपके परिणाम तो भारी लगते हैं', कहना। बल्कि ऐसा कहना। आप तो देखने वाले ही रहे।

प्रश्नकर्ता : दादा, लेकिन उस बॉल को रोकने जाते हैं, उसका उछलना बंद करने जाते हैं।

दादाश्री : यानी कि उसके परिणाम बंद करने का प्रयत्न करते हैं वे। अरे, उसके परिणाम तो बंद हो ही जाने हैं, अपने आप ही। तू फिर से फेंकना बंद कर दे, हम इतना कहते हैं। फेंकना बंद कर दे तो कर्ता-कर्म बंद हो जाएँगे। जितने के कर्ता हो चुके हैं, वे तो अपने आप ही फुटबॉल ऊँचाई से उछल, उछल, उछलकर शांत हो जाएगी।

वह फुटबॉल तो, आप इस तरफ यहाँ पर देखोगे तब भी उसके परिणाम बंद हो जाएँगे। जिस टाइम पर बंद होना है उस टाइम पर। और नहीं देखोगे तब भी उस तरफ बंद हो ही जाने

हैं। वे तो परपरिणाम हैं, जो परिणाम उत्पन्न होते हैं, वे परिणाम अपने आप ही बंद हो जाएँगे। मैं जानता हूँ कि कोई अभी भी अगर एकदम खूब क्रोध कर रहा हो तो धीरे-धीरे वह क्रोध कम होते-होते-होते खत्म होता जाएगा।

जितने क्रिया वाले हैं, वे सारे ही परपरिणाम हैं। वे फिर मन की क्रिया हों या वाणी की क्रिया हों या शरीर की क्रिया हों, वे सारे परपरिणाम हैं और वे डिस्चार्ज हैं। इस शरीर में से जो भी चीज़ें निकलती हैं, वे सारे परपरिणाम हैं। इसलिए इन सारे परपरिणाम को समझ लेना चाहिए। परपरिणामों को परपरिणाम समझना है और स्वपरिणाम को स्वपरिणाम समझना है। क्रोध हो तो उसे आप जानो कि यह परपरिणाम है। लोभ हो तो उसे भी जानो कि परपरिणाम है और ये मेरे परिणाम नहीं हैं।

परपरिणाम की मूल भूलें तो आपकी पहले की हैं ही सही। वह तो हम समझते हैं कि यह अहंकार, यह अज्ञानता और इन सबके इकट्ठा होने से यह परिणाम उत्पन्न हो गया है। आज आप में वह अहंकार भी नहीं है और वह अज्ञान भी नहीं है। आज आप उसके लिए रिस्पॉन्सिबल (ज़िम्मेदार) नहीं हैं।

इस तरह की शंका? वहाँ 'ज्ञान' हाज़िर

यह 'अक्रम विज्ञान' तो 'साइन्टिफिक' (वैज्ञानिक) है! विज्ञान है! एक्ज़ेक्ट (यथार्थ) है! और बाकी सब तो 'डिस्चार्ज' (गलन) हो रहा है! जब तक 'कर्तापद' का *भान* है, तब तक 'चार्ज' होता ही रहता है। अक्रम मार्ग में 'हम' आपका कर्तापद निकाल देते हैं। 'मैं करता हूँ' यह *भान* चला जाता है और 'कौन करता है' वह समझा देते हैं। इसलिए 'चार्ज' होना बंद हो जाता है! फिर बचा क्या? सिर्फ 'डिस्चार्ज' स्वरूप! जो पर-परिणाम में है, 'डिस्चार्ज' रूपी है, उसमें वीतरागता रखनी है, अन्य कोई उपाय ही नहीं है!

यह ज्ञान मिलने के बाद तो (खुद) महावीर भगवान के जैसे रह सके, ऐसा है, क्योंकि उसके बाद ज़रा सा भी लेपायमान नहीं होता। 'फिर आत्मा निर्लेप।' एक बार आपको यह ज्ञान दे दिया उसके बाद, निर्लेप होने के बाद फिर ज़रा सा भी कभी भी लेपायमान नहीं हो सकता। शंका होती है कि मुझे यह कर्म बंध जाएगा लेकिन फिर भी वह नि:शंक है।

इस 'ज्ञान' के बाद अब आप कोई काम करने जाओ न, तब अगर ऐसी शंका हुई कि 'दोष तो नहीं लगेगा?' उस समय आत्मा हाज़िर था इसलिए आपकी एक शंका खत्म हो गई। वर्ना ऐसी शंका किसे होती है? इस जगत् में लोगों को ऐसी शंका होती है? किसलिए नहीं होती? आत्मा हाज़िर ही नहीं है वहाँ पर!

शंका किसे होती है? 'मैं कर्ता हूँ' ऐसी शंका किसे होती है? अत: जब आपको शंका हो तब समझना कि आत्मा हाज़िर था। इसलिए वह शंका खत्म हो गई।

प्रश्नकर्ता : जब तक ज्ञानज्योति जलती रहे, तभी तक शंका होती है। ज्ञानज्योति नहीं होगी तो शंका कहाँ से आएगी?

दादाश्री : हाँ। गाड़ी के आगे प्रकाश हो तब पता चलता है कि जीव-जंतु गाड़ी से कुचले जा रहे हैं लेकिन अगर प्रकाश ही नहीं होगा तो? शंका ही नहीं होगी न!

यह तो आपने 'ज्ञान' दिया इसलिए तन्मयाकार होता ही नहीं। फिर खुद के मन में ऐसा होता है कि 'मैं एकाकार हो गया होऊँगा?' लेकिन नहीं, वह शंका होती है। और उसके लिए

भगवान ने कहा है कि 'शंका होती है, इसका मतलब तू ज्ञान में ही है'। क्योंकि दूसरे किसी व्यक्ति को शंका नहीं होती कि 'मैं तन्मयाकार हो गया हूँ'। वे लोग तो तन्मयाकार हैं ही। जबकि आपको तो यह 'ज्ञान' मिला है इसलिए आपको शंका होती है कि 'मैं तन्मयाकार हो गया होऊँगा या क्या?' वह शंका हुई! फिर भी भगवान कहते हैं, 'वह शंका हम माफ करते हैं'। कोई कहेगा, 'भगवान, माफ क्यों कर रहे हैं?' तब भगवान क्या कहते हैं? 'वह तन्मयाकार नहीं हुआ, उसकी समझ में फर्क है।'

वह तन्मयाकार नहीं हुआ है लेकिन यह तो सिर्फ शंका हो गई है। औरों को क्यों शंका नहीं होती? औरों को शंका होती है क्या? नहीं। उन लोगों को तो 'मैं अलग हूँ' ऐसा विचार भी नहीं आया। अतः आप अलग ही हो। और फिर भी 'मैं तन्मयाकार हो गया हूँ या क्या?' ऐसी शंका हुई तब भी भगवान 'लेट गो' (जाने देना) करते हैं। लेकिन 'अंत में धीरे-धीरे अभ्यास से, वह शंका भी नहीं होनी चाहिए, भगवान ऐसा कहते हैं।

शंका है अतः जागृति है

प्रश्नकर्ता : आपने यह जो डिस्चार्ज कहा, वह तो *संवरपूर्वक निर्जरा* (नए कर्म बीज डले बिना कर्मफल की निर्जरा हो जाना) हुई। वह तो जब खुद निर्लेप रहेगा, तभी यह चीज़ हो सकेगी न?

दादाश्री : निर्लेप हो ही, फिर अब आएगा कहाँ से? कौन से गाँव से आएगा? निर्लेप ही है। यह जो आपको शंका है, वही आपको लेपायमान कर रही है। लेकिन यदि भगवान से पूछें कि, 'भगवान इसे शंका हो रही है, इसलिए यह निर्लेप नहीं है न?' तब वे कहेंगे, 'नहीं, ऐसी शंका है, फिर भी इसे कर्म नहीं बंधेंगे'। क्योंकि यह शंका वह जागृति है। भगवान क्या कहते हैं? 'इस जगत् के लोगों को शंका नहीं होती। इन्हें शंका है, इसीलिए जागृति है। इसीलिए इन्हें कर्म नहीं बंधेंगे।' तो ये भगवान कितने पक्के हैं!

मैं तरफदारी नहीं करता। कहते हैं, 'हम तरफदारी नहीं करते'। बेटा बाप की तरफदारी करता है या बाप बेटे की करता है। यह ज्ञान तरफदारी करने का नहीं है, यह ज्ञान तो एक्ज़ेक्ट है कि शंका हुई, इसीलिए तू निःशंक है, इसीलिए तू शुद्धात्मा है। तू शुद्धात्मा हो गया है वह बात तय हो गई। तुझे शंका क्यों हुई? शंका किसी को होती ही नहीं है। किसी को शंका नहीं होती कि मैं इसमें तन्मयाकार हो गया चंदूभाई के साथ। अतः यह बात भी सही है कि, शंका हुई फिर भी तू निःशंक है! शंका हुई इसलिए यह तय हो गया कि 'तू शुद्धात्मा है'। तब कहे, तय हो गया। फिर अब मुझे कोई हर्ज नहीं है, कोई दुःख भी नहीं है भाई।

जीवित मनुष्य को शंका होती है या मृत को?

प्रश्नकर्ता : जीवित को ही होती है!

दादाश्री : तो जितने लोगों को शंका होती है, उन्हें भगवान ने 'जीवित' कहा है और बाकी को 'मृत' कहा है, ज्ञान ऐसा कहता है। समझदारी की बात है क्या? तीर्थंकरों की बात समझदारी वाली है? वीतरागों की बात समझदारी वाली है? शंका होती है, फिर भी तू निःशंक है! यानी कि ऐसा ग़ज़ब का विज्ञान है! और वहाँ पर भी यदि ज़ोर नहीं लगाएँगे तो फिर उन्हीं की भूल हैं न?

अक्रम का ऐश्वर्य है यह तो

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा को किस प्रकार देख सकते हैं?

दादाश्री : ऐसा है न, कि शुद्धात्मा देखना, उसका अर्थ क्या है? यह सोने की डिबिया है,

उसके अंदर रखा हुआ हीरा एक बार खोलकर मैं दिखा देता हूँ। फिर डिब्बी बंद कर देता हूँ, उससे वह हीरा चला नहीं जाता। आपके *लक्ष* में रहता है कि इसमें हीरा ही है। क्योंकि आपने उसे देखा था। अरे, आपकी बुद्धि ने उस दिन 'एक्सेप्ट' (स्वीकार) किया था। हमने 'ज्ञान' दिया, उस घड़ी आपके मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार सभी ने 'एक्सेप्ट' किया। उसके बाद शंका खड़ी ही नहीं होती।

अब अंदर शंका नहीं करता न? वर्ना एक घंटे के लिए भी शंका किए बगैर नहीं रहते, ये इतनी सारी जमात हैं अंदर। ऐसा कोई ज्ञान नहीं है, जिसे अंदर सभी 'एक्सेप्ट' करें। या तो मन विरोध करता है, या फिर चित्त विरोध करता है। लेकिन कोई न कोई टेढ़ा चले बगैर रहता ही नहीं। अत: अंदर सब एकमत हो जाएँ, ऐसा नहीं है। अंदर बहुत जमात हैं। उनमें से एकाध भी टेढ़ा बोले कि 'ऐसा होगा तो?' कि शंका हुई! और आपके अंदर तो कोई बोलता ही नहीं है न! सभी एकमत-एकसाथ ही हैं न? यानी अंदर सभी एकमत हो जाएँ, तब नि:शंक हो सकते हैं।

इस शरीर में कभी भी सब एकमत-एकसाथ होते ही नहीं हैं। मूर्च्छित हो जाए, तब ठीक है। मूर्च्छा यानी मदिरा पिया हुआ! अंदर उन्हें मदिरा पिलाओ तो फिर सब मस्ती में रहते हैं। जबकि यह तो 'विदाउट' (उसके बिना) मूर्च्छा! और यह 'ज्ञान' तो थोड़ी बहुत मूर्च्छा चढ़ गई हो न, तो भी उतार देता है।

यानी आत्मा से संबंधित शंका में ही सभी रहते हैं, चाहे कहीं भी जाओ। सभी को आत्मा संबंधी शंका और शंका के कारण ही यहाँ पड़े हुए है। वे नि:शंक होते नहीं और उनके दिन बदलते नहीं। 'ज्ञानी पुरुष' के अलावा तो कहीं भी कोई आत्मा में नि:शंक हुआ ही नहीं है। एक भी व्यक्ति नि:शंक नहीं हुआ, आत्मा से संबंधित शंका ही रहा करती है। लोग तो नि:शंक ज्ञान ढूँढते हैं लेकिन वह ज्ञान लोगों के पास है नहीं।

आत्मा से संबंधित नि:शंक होना कोई आसान बात नहीं है। यह तो यहाँ पर दरअसल आत्मा प्राप्त हो जाता है इसलिए एक घंटे में नि:शंक हो जाता है। यह ऐसा-वैसा ऐश्वर्य नहीं है। लेकिन लोगों को समझ में नहीं आता, अक्रम का ऐश्वर्य है यह तो! वर्ना करोड़ों जन्मों में भी आत्मा के संबंध में नि:शंक नहीं हो सकता और आत्मा *लक्ष* में भी नहीं आता कभी भी।

निज शुद्धत्व में नि:शंकता

दरअसल आत्मा तो 'आकाश' जैसा है और यह शुद्धात्मा, यह तो एक संज्ञा है। इस देह द्वारा तुझसे चाहे कैसे भी काम हो जाएँ, अच्छे हों या बुरे हों, तू तो शुद्ध ही है। तब कोई कहे कि, 'हे भगवान, मैं शुद्ध ही हूँ? लेकिन इस देह से जो उल्टे काम होते हैं, वे?' तब भी भगवान कहेंगे, 'वे कार्य तेरे नहीं हैं। तू तो शुद्ध ही है। लेकिन यदि तू माने कि ये कार्य मेरे हैं, तो तुझे चिपकेंगे'। इसलिए शुद्धात्मा शब्द, उसके लिए 'संज्ञा' लिखा गया है।

और 'शुद्धात्मा' किसलिए कहा गया है 'इसे'? कि संपूर्ण संसार काल पूर्ण होने के बावजूद 'उसे' अशुद्धता छूती ही नहीं, इसलिए शुद्ध ही है। लेकिन 'खुद को' 'शुद्धात्मा' की 'बिलीफ' नहीं बैठती न! 'मैं' शुद्ध किस तरह से हूँ? 'मुझसे इतने पाप होते हैं, मुझसे ऐसा होता है, वैसा होता है।' इसलिए मैं शुद्ध हूँ, वह 'बिलीफ' 'उसे' बैठती ही नहीं और शंका रहा करती है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ' किस तरह से कह सकते हैं? मुझे शंका है।

अत: इस 'ज्ञान' के बाद अब 'तुझे' 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का *लक्ष* बैठा है। इसलिए अब तुझसे चाहे कैसा भी कार्य हो जाए, अच्छा या बुरा, उन दोनों का मालिक 'तू' नहीं है। 'तू' शुद्ध ही है। तुझे पुण्य का दाग़ नहीं लगेगा और पाप का भी दाग़ नहीं लगेगा। इसलिए 'तू' शुद्ध ही है। तुझ पर शुभ का भी दाग़ नहीं लगेगा और अशुभ का भी दाग़ नहीं लगेगा। हम 'ज्ञान' देने के साथ ही कहते हैं न, कि 'अब तुझे ये सब स्पर्श नहीं करेगा'। वह नि:शंक हो जाए, उसके बाद उसकी गाड़ी चलती है। तुझे यदि शंका होगी तो तुझसे चिपकेंगे और तू नि:शंक है तो तुझे स्पर्श नहीं करेंगे! 'दादा' की आज्ञा में रहेगा तो तुझे स्पर्श नहीं करेगा!

मूल हकीकत में, शंका होने जैसा है ही नहीं। वास्तव में कुछ करता ही नहीं है, 'तू' ऐसी कोई क्रिया करता ही नहीं है। यह तो सिर्फ भ्रांति ही है, गाँठ पड़ चुकी है। यानी शुद्धात्मा, वह संज्ञा है, खुद शुद्ध ही है, तीनों काल में शुद्ध ही है, यह समझाने के लिए है। अत: जब संज्ञा में रहता है तो फिर मज़बूत हो जाता है। उसके बाद अपना 'केवलज्ञान स्वरूप'!

बाकी, 'दरअसल आत्मा' तो 'केवलज्ञान स्वरूपी' ही है। मुझमें और आपमें फर्क क्या है? 'हम' 'केवलज्ञान स्वरूप' में रहते हैं और 'आप' (महात्मा) शुद्धात्मा की तरह रहते हो। आपको मूल आत्मा की जो शंका थी वह चली गई, इसलिए दूसरी शंकाएँ भी चली जाती हैं। लेकिन फिर भी बुद्धिशाली लोगों को, मूल स्वभाव अगर वैसा हो न, तो फिर से शंका होने लगती है। आत्मा से संबंधित शंका खत्म हो जाए तो समझना की मोक्ष हो गया। 'आत्मा यही है' ऐसा अपने मन में विश्वास हो गया कि सब काम हो गया!

तीर्थंकरों ने आत्मा जाना है, उसे ज्ञानी ने देखा

प्रश्नकर्ता : एक आप्तसूत्र में ऐसा है कि, 'मैंने आपको जैसा आत्मा दिया है, ऐसा आत्मा तीर्थंकरों ने जाना है और वह मैंने अपने दर्शन में देखा है'।

दादाश्री : तीर्थंकरों को धन्य है कि उनकी इतनी गहरी खोज है! उसमें से उन्होंने आत्मा ढूँढ निकाला, वह आश्चर्य है! देह में आत्मा को ढूँढ निकालना और वह भी बिल्कुल अलग तो उसे बहुत बड़ा आश्चर्य ही कहा जाएगा न! और मैंने वह देखा है। बिल्कुल अलग आत्मा मैंने देखा है। तीर्थंकरों ने जिस आत्मा को जाना है, तीर्थंकरों ने जिस परमात्मा को जाना है, वह मैंने देखा है। अन्य लोग उसका वर्णन नहीं कर सके। अन्य लोग किसी भी ज्ञान को देख सकें, ऐसी स्थिति में नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : इसका क्या कारण है, दादा?

दादाश्री : वह बहुत उच्च पद है। मोक्ष तो सभी का होगा लेकिन वह जो पद है, वह जो मूल आत्मा को देखा है, वह बहुत उच्च पद है। एब्सल्यूट को देखने वाला। शुद्धात्मा, वह एब्सल्यूट आत्मा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : आत्मा को तो वह देख सकता है न? मोक्ष में जाने से पहले तो वैसी स्थिति आनी चाहिए न?

दादाश्री : वह तो आ जाती है। उसका स्वभाव ही ऐसा है कि किसी को बता नहीं सकते, खुद देख सकते हैं, समझ सकते हैं लेकिन किसी को बता नहीं सकते। तीर्थंकर बता सकते हैं लेकिन वे (वैसा बताने में) वीतराग रहते हैं। ऐसा (बताना) सिर्फ हमारे ही हिस्से में आया है!

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस प्रकार की वीतरागता दूसरों के लिए कैसे लाभदायक है?

दादाश्री : वह लाभदायक हो या न भी हो, वह उनके दर्शन का लाभ है, सिर्फ दर्शन ही। वैसा दर्शन मेरे पास नहीं है। उनके दर्शन करने में और इस दर्शन में बहुत फर्क है। मैंने तो... उन्होंने जो आत्मा जाना है, वही आत्मा देखा है मैंने। उतना है मेरे पास। बाकी, उनके दर्शन तो कुछ और ही प्रकार के! यदि आप वे दर्शन कर लोगे तो आपका वहीं पर मोक्ष हो जाएगा। उसके बाद फिर मोक्ष के लिए वहाँ से आगे जाना ही नहीं पड़ेगा, इसीलिए यह ज्ञान देता हूँ न! मैं आपकी दृष्टि सीधी कर देता हूँ, मशीन घुमा देता हूँ, उसके बाद अगले जन्म में तीर्थंकर मिलते ही मोक्ष हो जाएगा आपका। वे अंतिम निमित्त हैं। ये तो, लोगों को लाभ क्यों होता है कि मैंने वह आत्मा देखा है, इसलिए लोगों को बहुत लाभ होता है। यानी कि उस वस्तुस्थिति का लाभ होता है। यों ही छू कर चला जाएगा न, तब भी लाभ हो जाएगा!

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि आपने देखा तो हमारे लिए तो श्रद्धा वाली बात हो गई न? नि:शंक हो सकते हैं न, वर्ना कोई ऐसा नहीं कह सकता कि हमने देखा है!

दादाश्री : कोई नहीं कह सकता।

प्रश्नकर्ता : अब, कोई ऐसा कहने वाला मिलेगा कि देखा है?

दादाश्री : देखा है, ऐसा कहने वाला कोई हो नहीं सकता और अगर कोई ऐसा कहे तो फिर वे तीर्थंकर हैं या फिर तीर्थंकर के नज़दीक वाले हैं।

अनंत जन्मों का पृथक्करण

ये सब तो मेरी पृथक्करण की हुई चीज़ें हैं और ये सभी एक जन्म की चीज़ें नहीं हैं। एक जन्म में क्या इतने सारे पृथक्करण हो सकते हैं? अस्सी सालों में कितने पृथक्करण हो सकते हैं? यह तो कितने ही जन्मों का पृथक्करण है, वह सब आज हाज़िर हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : इतने सारे जन्मों का पृथक्करण, वह इकट्ठा होकर आज किस तरह हाज़िर होता है?

दादाश्री : आवरण टूट गया इसलिए। अंदर ज्ञान तो है ही सारा। आवरण टूटना चाहिए न? ज्ञान की पूँजी तो है ही, लेकिन आवरण टूटने पर प्रकट होता है!

सभी फेज़िज़ (अवस्थाओं) का ज्ञान मैंने ढूँढ निकाला है। हर एक 'फेज़' में से मैं गुज़र चुका हूँ और हर एक 'फेज़' का मैं 'एन्ड' ला चुका हूँ। उसके बाद यह 'ज्ञान' हुआ है।

चंद्र के कितने 'फेज़'? पूरे पंद्रह 'फेज़िज़'। उन पंद्रह 'फेज़िज़' में तो अनंत काल से वह पूरे जगत् को नचा रहा है! 'फेज़िज़' पूरे पंद्रह और उसमें तो वह पूरे जगत् को अनंतकाल से नचा रहा है! वही का वही चंद्रमा आज तीज का चंद्रमा कहलाता है, इतना ही है। जगत् के लोग उसे तीज कहते हैं लेकिन चंद्रमा वही का वही है। और फिर चंद्रमा क्या कहेगा? 'मैं तीज हूँ, मैं तीज हूँ।' तब जगत् के लोग बाहर निकलकर कहेंगे, 'क्या बक-बक कर रहा है? कल चौथ नहीं हो जाएगी? कल दूज थी। क्यों बोलता ही रहता है?' चंद्रमा वही का वही है। यह दूज, तीज, चर्तुथी, पंचमी होती ही रहेगी! और उस पर भी ये लोग शंका करते हैं। 'नहीं, यह तीज नहीं है, यह तो दूज है' कहेंगे। तब दूसरा क्या कहेगा, 'तीज है। इस पर भी शंका करते हैं कि यह दूज है?' ले! शंका को क्या ढूँढने जाना पड़ता है? इसीलिए तो दु:खी हैं सभी। लोग दु:खी हैं,

उसका कारण शंका ही है। निरा दुःख, दुःख और दुःख ही है इसलिए मैं इस बात को समझने का कह रहा हूँ न, कि 'समझो, समझो, समझो'!

ये चंद्रमा की दूज, तीज... पूनम जो दिखाई देती हैं, वे क्या हैं? वे उसके 'फेज़िज़' हैं। चंद्र तो वही का वही है। उसी प्रकार आप आत्मा हो और अन्य सारे 'फेज़िज़' हैं। ये जो फेज़िज़ हैं वे लोगों के लिए हैं कि, 'ये चंदूभाई हैं'। क्या चंद्र कभी दूज हुआ है? क्या वह कटा है? वह तो चंद्र ही है! जैसे फेज़िज़ ऑफ द मून होते हैं, वैसे ही ये फेज़िज़ ऑफ द मैन हैं! सभी 'फेज़िज़' समझने जैसे हैं। जगत् के तमाम 'फेज़िज़' मेरे पास आ चुके हैं। ऐसा एक भी फेज़ बाकी नहीं है कि जिसमें से मैं गुज़रा नहीं हूँ! हर एक जन्म के 'फेज़िज़' मेरे ध्यान में हैं और ये बातें हर एक 'फेज़' के अनुभव सहित है।

अनुभवी वीतरागों की गुह्य खोज़

यह वीतरागों के 'साइन्स' की बहुत बड़ी खोज है! कैसा गूढ़ार्थ! अत्यंत गुह्य! यह 'रियल' और यह 'रिलेटिव', दोनों में भेद डालना 'ज्ञानी पुरुष' के अलावा अन्य किसी का काम ही नहीं है न! जो रियल को जाने, वे 'ज्ञानी'! लेकिन रियल के बारे में जो सभी कुछ जाने, वे 'अनुभव ज्ञानी'!

वीतरागों के एक ही वाक्य को समझ लें तो हल आ जाएगा। क्रिया *पुद्गल* में ही है, आत्मा में कोई क्रिया नहीं है। यहीं पर जगत् को भ्रांति हो जाती है कि यह सब किस तरह से चल रहा है? जगत् जिसे आत्मा मानता है वहाँ आत्मा का एक अंश भी नहीं है। आत्मा को तो 'ज्ञानियों' ने अलग देखा है, अलग जाना है, अलग अनुभव किया है। यह सब तो 'अक्रम विज्ञान' से खुला हो गया है! 'मैंने' जो 'आत्मा' देखा है वह 'इसके' जैसा देखा है, वह ऐसा है जो कुछ भी काम नहीं करता। और उसकी उपस्थिति से ही यहाँ सारी क्रियाएँ चलती रहती हैं। अहंकार का नशा उतरेगा तो आत्मा का अनुभव होगा। आत्मा ऐसा नहीं है कि मानने से माना जा सकें। जैसे इस *पुद्गल* का अनुभव हो सकता है, उसी प्रकार आत्मा का भी अनुभव हो सके, ऐसा है!

आत्मा 'ज्ञान स्वरूप' ही है, वह कोई अन्य वस्तु नहीं है। यह दीये का प्रकाश जड़ है लेकिन क्या वह काटने से कट जाता है? आत्मा का प्रकाश तो कुछ और ही है! वह इतना अधिक सूक्ष्म है कि भट्ठी जलाई जाए, तब भी वह ज्ञान को स्पर्श नहीं कर सकता! आत्मा की तुलना में अग्नि की ज्वाला स्थूल है। आत्मा तो इतना सूक्ष्म है कि उस पर इसका कोई असर हो ही नहीं सकता और वही परमात्मा है! परमात्मा हैं? परमात्मा हैं ही और वे आपके पास ही हैं। बाहर कहाँ ढूँढ रहे हो? लेकिन कोई आपका वह दरवाज़ा खोल दे, तब दर्शन कर पाओगे न? वह दरवाज़ा इस तरह से बंद हो गया है कि कभी खुद से खोला ही नहीं जा सकता। वह तो, जो खुद पार उतर चुके हैं, ऐसे तरण-तारणहार 'ज्ञानी पुरुष' का ही काम है!

आत्मा निरंतर अलग है, देह से निरंतर अलग ही रहे, ऐसा है। ऐसा *भान* हो जाए तभी से परमात्मा है। जब तक पूर्ण परमात्मा का अनुभव नहीं हो जाता, सच्ची आज़ादी नहीं मिल जाती, तब तक रुकना ही नहीं चाहिए।

अक्रम में ज्ञानी कृपा से 'निःशंक आत्मा'

प्रश्नकर्ता : खूबी यह है कि आपके जो शब्द निकलते हैं, वे 'एक्ज़ेक्ट' 'उसे' अंदर स्पर्श करते हैं, वह रोग निकल जाता है, दृष्टि बदल देते हैं और अंदर 'एक्ज़ेक्ट' क्रियाकारी होता हुआ दिखाई देता है, बहुत वैज्ञानिक लगता है यह सब!

दादाश्री : बात पूर्ण वैज्ञानिक होगी, तभी लोगों का निबेड़ा आएगा न, नहीं तो निबेड़ा ही नहीं आएगा न!

''मारग साचा मिल गया, छूट गया संदेह।''

संदेह छूट गया, सही मार्ग तो मिल गया। रास्ता भूल गए होंगे तो वापस एक मील चलना पड़ेगा और क्या करना पड़ेगा? लेकिन जिसे जाना है उसे मिल आएगा। 'दादा' से पूछना कि 'हम भटक गए हैं या सही रास्ते पर हैं?' इतना पूछना। 'मेरा ज्ञान कैसा है', ऐसा नहीं पूछना। 'भटक गया हूँ या सही रास्ते पर हूँ?' इतना ही पूछना है। दादा कहें, 'ठीक है रास्ता' तो फिर चलते जाना।

दादा चले न, उनके पीछे-पीछे उसी मार्ग पर चलते जाना है। समझ में आए तब भी और समझ में न आए तब भी! बिल्कुल भी दिखाई न दे तो हाथ पकड़कर पीछे चलते रहना है। परंतु मोक्षमार्ग तो बहु विकराल मार्ग है। यह तो अक्रम है इसलिए लिफ्ट जैसा सरल और मुलायम, रेशम जैसा लगता है। उनके बताए मार्ग पर चलना आना चाहिए। ऐसा कभी नहीं हुआ न! आत्मा संबंधी कोई नि:शंक नहीं हो पाया। यदि एक भी शंका रही तो वह मोक्ष का मार्ग प्राप्त नहीं कर सकता। मेरी शंका तो चली गई है लेकिन आपकी भी शंकाएँ चली गई हैं। नि:शंक होकर बैठे हों। नि:शंक 'मैं शुद्धात्मा ही हूँ', ऐसा बोलो। उसमें ज़रा सी भी शंका नहीं रही। हम यह जो एक-एक शब्द बोलते हैं, उस प्रत्येक शब्द में हम नि:शंक हैं।

प्रश्नकर्ता : ज्ञानी के शब्द में इस चेतना का संग है, क्या इसलिए नि:शंक हो जाते हैं?

दादाश्री : हाँ, तभी हो पाते हैं न! वर्ना कैसे हो पाते? उनका वचनबल है और सजीवन हो चुकी वाणी है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, उनका संग है। कल कहा था न, अलौकिक की मुहर है।

दादाश्री : हाँ, अलौकिक की मुहर!

प्रश्नकर्ता : उनका संग है इसलिए नि:शंक हो जाते हैं।

'आज्ञा' में रहकर काम निकाल लो

अब नि:शंक हुए हो, अब आज्ञा में रहो। बुढ़ापा निकाल दो। यह शरीर चला जाए तो भले जाए, कान काट ले तो काट ले, *पुद्गल* को फेंक ही देना है न। *पुद्गल* पराया है। पराई चीज़ है, अपने पास नहीं रहेगी। यह तो जब उसका टाइम आएगा, व्यवस्थित का टाइम आएगा, उस दिन जब भी होगा तब ले जाएगा। भय नहीं रखना है। आपको कहना है, 'ले जाओ', इसका मतलब यह नहीं कि कोई फालतू बैठा है ले जाने के लिए। लेकिन उससे आप में निर्भयता रहेगी। 'जो होना हो वह हो', कहना।

ऐसा है, यह चंदूभाई नामक शरीर, हमारे लिए महामित्र समान हो गया है क्योंकि इस शरीर में रहते आपने अक्रम ज्ञानी को पहचाना है और आपको अक्रम ज्ञान प्राप्त हुआ है और वह अनुभव में सिद्ध हुआ है। इसलिए अब इस शरीर से कहना कि 'हे मित्र, तेरी जो दवाई करनी होगी, वह मैं करूँगा। अगर हिंसक दवाई होगी तो वह भी करूँगा लेकिन तू रहना'। आपकी ऐसी भावना होनी चाहिए। यह शरीर नहीं, ऐसे बहुत सारे शरीर चले गए, सभी शरीर व्यर्थ ही गए हैं न! अनंत जन्मों में शरीर व्यर्थ ही गए हैं। लेकिन इस शरीर ने तो आपको यथार्थ फल दिखाया है न! और चंदूभाई के नाम पर दिखाया है न! अत: इस शरीर का ध्यान रखना और अब काम निकाल लो।

'वर्ल्ड' में कोई भी व्यक्ति आत्मा से संबंधित नि:शंक यानी शंका रहित नहीं हुआ है। यदि नि:शंक हुआ होता तो उसका निबेड़ा आ जाता और दूसरे पाँच लोगों का भी निबेड़ा ले आता। यह तो लोग भी भटक गए और वह भी भटक रहा है। अज्ञान संसार समुद्र जैसा है! इसमें जन्म लेते हैं और मरते हैं! उसमें यदि खुद के 'निश्चय-स्वरूप' को समझ जाए तो काम हो जाएगा! 'आत्मस्वरूप को जानना है', ऐसा तय करना है। जानना तो पड़ेगा न? यों ही गप्प लगाई जाए कि, 'मैं आत्मा हूँ, मैं आत्मा हूँ', तो उससे कुछ नहीं होगा। आत्मा अनुभव में आ जाना चाहिए, वर्ना तब तक संसार की ये परेशानियाँ जाएँगी नहीं न!

मैं अलग और आत्मा अलग, इस तरह मेल नहीं बैठ सकता न कभी! जब ऐसा *भान* हो जाएगा कि, 'मैं ही आत्मा हूँ' तब मेल बैठेगा। भीतर आत्मा विराजमान है, वह सबकुछ देने के लिए तैयार है। लेकिन इसे घड़ी भर के लिए ऐसी श्रद्धा नहीं आई है कि, 'मुझे कोई परेशानी नहीं आएगी'। यदि श्रद्धा आ जाए तो कोई परेशानी आएगी ही नहीं। यह बात तो कैसी है? कि यदि पुजारी कहें, 'भगवान सो गए', तो यह भी सो जाता है! तब हिम्मत चली जाती है सारी! भीतर भगवान निरंतर जाग्रत रूप से बैठे हुए हैं! जो शक्तियाँ चाहिए, वे माँगने से मिल सकती हैं!

नि:शंकता-निर्भयता-नि:संगता-मोक्ष

मानव जीवन का सार इतना ही है कि खुद अपने 'स्वरूप' में, *भान* में आकर और 'स्वरूप' में ही रहना है। 'खुद के स्वरूप' का *भान* हो जाए तो समझो हो गया! काम हो गया! और खुद के स्वरूप के प्रति नि:शंक हो गया, कैसा?

प्रश्नकर्ता : नि:शंक हो गया खुद के स्वरूप के प्रति।

दादाश्री : शंका रहित। किसी भी काल में कोई जीव स्वरूप में शंका रहित हुआ ही नहीं है। ऐसा होगा या वैसा होगा? आत्मा ऐसा होगा या वैसा होगा? ऐसा होगा या वैसा होगा? उसमें ही पड़ा हुआ है पूरा जगत्, साधु-साध्वी, साधु-संन्यासी सभी। यह तो मैं ज्ञान देता हूँ न, तो सभी पूरी पार्लामेन्ट एकमत-एकसाथ हस्ताक्षर कर देते हैं। वर्ना भीतर बोले बगैर नहीं रहते। वह बुद्धि बोलती है, और भी कोई बोलता है, चित्त बोलता है, सभी शोर-मचाते हैं। परंतु ये एकमत-एकसाथ हो जाते हैं। यानी नि:शंक हो जाते हैं। शंका रहित खुद का स्वरूप, नि:शंक और इस नि:शंकता से निर्भयता उत्पन्न होती है और निर्भयता से असंगता उत्पन्न होती है। और वह असंगता वही मोक्ष है। असंग ही है आत्मा। उसके बाद खुद असंग स्वरूप में रह सकता है। कृपालुदेव ने यह बहुत ही सूक्ष्मता से लिखा है और अपने जो शास्त्र हैं न, वे लंबे हैं, उनका अंत आ सके ऐसे नहीं हैं। कृपालुदेव ने बहुत लंबा चित्रण नहीं किया है, थोड़े में और शॉर्टकट में समझा दिया। लेकिन कृपालुदेव का समझ लेने के बाद भी आत्मा जाने बगैर छुटकारा नहीं है। आत्मा जानने के लिए ये सारे शास्त्र लिखे गए हैं।

आत्मा से संबंधित नि:शंकता उत्पन्न हो गई तो 'वर्ल्ड' में कोई भी शक्ति उसे भयभीत नहीं कर सकती। निर्भयता! और निर्भयता उत्पन्न हो जाती है, इसलिए संग में रहने के बावजूद भी नि:संग रहा जा सकता है। भयंकर संग में रहने के बावजूद भी नि:संगता रह सकती है, कृपालुदेव ऐसा कहना चाहते हैं। यह आत्मा है, ऐसा निश्चित हो गया है। निश्चित अर्थात् अंदर मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सभी को एक आवाज़ में निश्चित हो जाता है। कोई दिक्कत, शंका, आशंका, कुशंका न करे, तब समझना कि क्षायक समकित

हो गया है। ऐसा हो चुका है आपको। अंदर कोई शंका-वंका करता है अब?

प्रश्नकर्ता : नहीं, अब नहीं। अब कुछ खास नहीं।

दादाश्री : कोई शंका ही नहीं करता और नि:शंकपना आ जाता है। नि:शंक आत्मा को जान लिया और उस नि:शंकता से निर्भयता उत्पन्न होती है और उस निर्भयता से नि:संगता आती है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, नि:संगता!

दादाश्री : और कोई बात ही नहीं न! उस नि:शंकता से निर्भयता रहती है, निरंतर निर्भयता रहती है और इसीलिए असंग रह पाते हैं। उसका फल असंग ही है। कृपालुदेव ने कितना अच्छा वाक्य लिखा है! नहीं? निर्भयता से नि:संगता, अर्थात् असंगता।

प्रश्नकर्ता : अब इसमें आप जो बता रहे हैं, उसके कार्यकारण जानने की अब ज़रूरत नहीं है।

दादाश्री : कारण जानने को रहा ही कहाँ फिर? अभी तक कारण जानने के लिए ही, शंका-शंका, ऐसा है या वैसा है, ऐसा है या वैसा है, ऐसा है या वैसा है? अब नि:शंक हो गए और नि:शंकता से निर्भय हो जाते हैं, नि:संग-असंग हो जाता है। इसीलिए वीतरागता आती है। फिर क्या चाहिए? इससे अधिक क्या चाहिए? नि:शंक हो गया। जगत् में एक भी नि:शंक व्यक्ति ढूँढना अत्यंत विकट है। आत्मा से संबंधित नि:शंकता उत्पन्न हो जाए तो निर्भय हो गया।

असंगता, वही आत्मा का स्वरूप

अक्रम विज्ञान एक घंटे में तो कितना अधिक बड़ा फल दे देता है। करोड़ों जन्मों में जो काम नहीं हो सकता, वह काम एक घंटे में हो जाता है! इस पर से आपको समझ जाना है कि अब आप शॉर्टकट में आ गए हैं। इसलिए काम निकाल लो। क्या करना है? यह एक जन्म, काम निकाल लेने के लिए (आत्मकल्याण) निकालो। और ज़्यादा जन्म बिगाड़ने नहीं है।

प्रश्नकर्ता : ठीक है। हाँ जी।

दादाश्री : और खुद का आत्मा भी कबूल करता है, कि 'हो गया अब'। अब नि:शंक हो गए। नि:शंकता से निर्भयता उत्पन्न होती है। निर्भयता से असंगता उत्पन्न होती है। असंगता, वही आत्मा का स्वरूप है।

'मैं चंदू नहीं, मैं शुद्धात्मा हूँ', वह है असंग

असंग अर्थात् 'मैं शुद्धात्मा हूँ', इसके अलावा अन्य कोई भान नहीं। खुद असंग ऐसा शुद्धात्मा है। मैं असंग ही हूँ, निर्लेप ही हूँ। वह रोंग मान्यता टूट गई है इसलिए गया। वह रोंग मान्यता थी इसीलिए तो लोग कहते हैं, 'मैं असंग कैसे कहला सकता हूँ?' ऐसा नहीं कहते लोग? और आपको तो खुद को समझ में आता है कि वह रोंग मान्यता टूट गई। 'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसी हमें दूसरे पद में भ्रांति हो गई थी। लेकिन अब जितना उल्टा आराधन किया है, उतना फिर से सीधा करोगे तो छूट जाएगा। उससे सीधा हो जाएगा। जितने (आगे) उल्टे रास्ते पर चले थे, उतना ही वापस लौटना होगा।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', वही असंगपना का *लक्ष* है। ज्ञान का फल विरति है। असंगपना ही विरति है। आत्मा प्राप्त होता है तब ही सर्वसंग परित्याग हो सकता है।

आपको आत्मा दिया है। आपको खुद का स्वरूप, सर्वसंग से रहित, मात्र आत्मा दिया है। किसी संग का उस पर असर नहीं हो सकता

और यदि संग का असर हो तो आत्मा कभी भी आत्मवत् नहीं हो सकता। उस संग से असंग बनाने के बाद में तो आप में यह ज्ञान परिणमित हुआ है। वर्ना प्राप्ति नहीं हो सकती न! अब निश्चय से असंग हो, अतः असंग हो गए हो, निश्चय से। व्यवहार (जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया) के लोग भी बोलते हैं लेकिन वह नहीं चलेगा। आपको तो अपने आप ही असंग स्वरूप का *लक्ष* रहता है। *लक्ष* अर्थात् क्या? आत्मध्यान कहलाता है। पहले, 'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसा ध्यान था, अब 'शुद्धात्मा हूँ' ध्यान में आया। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ध्यान में, काफी कुछ भाग तो शुद्धात्मा ध्यान में चला जाता है। बहुत फाइलें हों तो ज़रा चूक जाते हैं, लेकिन फिर भी ध्यान में क्या है? शुद्धात्मा। वह शुक्लध्यान है, असंग स्वरूप है। वर्ल्ड में इससे बड़ा पद कोई नहीं हो सकता। (यह तो) अविरति पद है। इसलिए इतना ही संभालना है कि आप अविरति पद में आ गए हैं, अतः इन सभी का *निकाल* (निपटारा) तो करना पड़ेगा न? हमारी आज्ञा में रहोगे तो हल आ जाएगा।

'शुद्धात्मा के लक्ष से' पुरुषार्थ खुद के हाथ में

इस ज्ञान के मिलने के बाद में मनुष्य श्रेणी की शुरुआत कर सकता है, वर्ना श्रेणी की शुरुआत ही नहीं कर सकता न! इस पूरे संसार समुद्र में 'मैं शुद्धात्मा हूँ' कहा तो उसका एक पैर नीचे (तले में) टिका। एक पैर नीचे समुद्र में टिक गया। तो हम शुद्धात्मा हैं, इस ज्ञान के *लक्ष* वाले! बाहर वाले शुद्धात्मा बोलते तो हैं पर उनका पैर नीचे नहीं टिका है। यह तो, पूरे संसार समुद्र में कहीं भी पैर टिक ही नहीं पाता, इतनी गहराई तक पहुँच ही नहीं पाते न। जहाँ भी पैर नीचे टिकाने जाए तो पानी, पानी और पानी। यह पैर टिक गया, श्रेणी की शुरुआत हो गई। पैर टिक जाए तो थके हुए होने पर भी मन में तसल्ली रहती है। एक पैर पर खड़े रह पाते हैं, फिर धीरे-धीरे दूसरा पैर टिका सकते हैं, लेकिन एक तो टिक जाना चाहिए। तो यह पैर टिक गया, इसलिए पुरुषार्थ शुरू हो गया, वर्ना पुरुषार्थ खुद के हाथ में है ही नहीं न!

अब आप शुद्धात्मा हो गए हो यानी प्रतीति से निर्लेप ही हो गए, असंग ही हो गए। खुद इस देह से असंग ही है। यह ज्ञान देने के बाद तू एक क्षण लेपायमान नहीं हुआ। निर्लेप ही रहा है, असंगी ही रहा है। लेकिन जैसे-जैसे परिचय बढ़ता जाएगा, वैसे स्पष्टता होती जाएगी। रात को उठने के बाद तुरंत 'शुद्धात्मा हूँ' का *लक्ष* आ गया था तो पूरे जगत् की विस्मृति थी, वर्ना रात को सभी प्रकार का भान चला जाता है। लेकिन सब से पहले शुद्धात्मा याद आया, अर्थात् शुद्धात्मा के भान में आ गए।

निःशंक हुए शुद्धात्मा के लक्ष को लेकर

अब आपका शुद्धात्मा पद ऐसा है कि कभी भी लेपायमान नहीं हो सकता और चंचलता उसे स्पर्श नहीं कर सकती। क्योंकि *लक्ष* बैठ गया है। निर्लेप व अचल आत्मा प्राप्त हो तो ही *लक्ष* बैठता है।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा *लक्ष* केवल दर्शन है। केवल दर्शन अर्थात् सबकुछ समझ में आ गया। कुछ लोगों को अगर गहनता से समझ में नहीं बैठा हो लेकिन वास्तव में 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह वास्तव में समझ आ गया, उसे केवल समझ कहते हैं। यहाँ हमें शुद्धात्मा का *लक्ष* रहता है इसलिए लगता है कि शुद्धात्मा जैसा कुछ है, वह केवलदर्शन है, वही क्षायक समकित है। उसका फल क्या है? आकुलता-व्याकुलता मिट जाती है और निराकुलता रहती है।

यानी कि अब शंका चली गई। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', वह नि:शंक पद है और नि:शंक पद को भगवान ने क्षायक समकित कहा है। जब तक नि:शंक पद उत्पन्न नहीं होता तब तक वह क्षायक समकित नहीं कहलाता। क्षायक समकित को भगवान ने केवलदर्शन कहा है। अब हमें समझ-समझकर केवलज्ञान के अंश प्राप्त करने हैं। 360 तक पहुँचते-पहुँचते सबकुछ समझना है। जितना समझ में आया उतने समा जाएँगे फिर।

आत्मा के प्रति नि:शंक, वही है 'केवलज्ञान'

संसार में अनेक तरह के उपादान हैं, लेकिन सब से अंतिम उपादान, मोक्ष का उपादान, खुद का स्वरूप शुद्धात्मा है! 'हमने' आपको जो 'शुद्धात्मा' दिया है, वह 'फर्स्ट स्टेप' (पहला कदम) है। उससे आगे तो बहुत कुछ है। बाद में शुद्धात्मा का स्वरूप, उसके गुणों सहित प्रकट होगा! 'शुद्धात्मा' शब्द तो सिर्फ संज्ञा ही है। इससे, 'मैं शुद्ध ही हूँ, त्रिकाल शुद्ध ही हूँ', ऐसी संज्ञा में रह पाते हैं। शुद्धता के प्रति नि:शंकता उत्पन्न होती है। उसके बाद वाला पद अर्थात् 'अपना' 'केवल ज्ञानस्वरूप'!

भगवान ने क्या कहा है कि यदि आत्मा प्राप्त किया और आत्मा के संबंध में तू नि:शंक हो गया, तो उसके जैसा केवलज्ञान दुनिया में पहले था ही नहीं। उसी को हम 'केवलज्ञान' कहते हैं। आप तो आत्मा को लेकर संपूर्ण नि:शंक हो गए हो इसलिए दादा द्वारा दिए गए ज्ञान में मस्त रहो और वह ज्ञान आप ही हो। यह (चंदू वह) आपका स्वरूप नहीं है।

अपना यह साइन्स है न, इसलिए हम ऐसा कहते हैं न, कि 'अब तू शुद्धात्मा है और संसार में रहा है', इस पर शंका मत करना। क्योंकि मैंने तुझे जो दिया है, वह शुद्धात्मा कैसा है? वीतरागों ने देखा है, जाना है, अनुभव किया है, जो केवलज्ञान स्वरूप है, जो मैं अनुभव कर रहा हूँ और वही मैंने तुम्हें दिया है। और तुम्हें जो दिया है वह कैसा है? तो कहते हैं, मन-वचन-काया की तमाम संगी क्रियाओं से बिल्कुल असंग है, बिल्कुल निराला, ऐसा आत्मा है।

शब्द द्वारा 'आत्मा' बोलने से नहीं चलेगा। आत्मा की प्रतीति हो जानी चाहिए। प्रतीति अर्थात् आत्मा के प्रति नि:शंकता, उसे खुद को ही विश्वास हो जाता है! शब्दों से आत्मा को जानता है तभी से फायदा होने की शुरुआत हो जाती है। शास्त्र में शब्द आत्मा है, दरअसल आत्मा 'ज्ञानी' में है!

'ज्ञानी पुरुष' देह सहित 'आत्मा' हो चुके हैं! 'ज्ञानी' अर्थात् खुद के स्वरूप का और स्वभाव का ही चिंतवन होते रहना। 'स्वरूप' अर्थात् 'खुद कौन है', ऐसा डिसाइड होना और स्वभाव अर्थात् आत्मा के गुणधर्म, उन्हीं में जो रहा करते हैं, उन्हें कहते हैं 'ज्ञानी'। 'ज्ञानी' 'स्वरूप' में ही रहते हैं निरंतर, एक क्षण के लिए भी संसार में नहीं रहते! 'ज्ञानी पुरुष' के बिना किसी की शंका नहीं जा सकती। जब 'ज्ञानी पुरुष' शंका को निर्मूल कर देते हैं, तब वह नि:शंक हो जाता है।

मैं शुद्धात्मा अर्थात् शुद्ध ही हूँ। मुझ पर लेप का असर हो ही नहीं सकता। संग का असर हो ही नहीं सकता, ऐसा असंग। इसलिए शंका में मत रहना कि मुझ पर संग का असर हो गया है। क्योंकि असंगी को संग का असर कैसे हो सकता है? फिर भी शंका उत्पन्न हुई, तो भगवान क्या कहते हैं? तुझे शंका हुई वही बताता है कि आत्मा हाज़िर है। इसलिए तू नि:शंक ही है। ऐसा यह अविरोधाभास, वीतरागी विज्ञान है।

जय सच्चिदानंद

सिद्धांत, कर्म बंधन का

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने से पहले सभी अच्छे-बुरे कर्म किए हैं तो अब उनका निवारण कैसे लाएँ?

दादाश्री : काफी सारे कर्म तो जब हम ज्ञान देते हैं न, उस समय वे पाप भस्मीभूत कर देते हैं, अंदर भगवान की कृपा से। इसीलिए तो आत्मा हाज़िर रहता है न, वर्ना आत्मा कभी भी हाज़िर ही न रहे। हज़ारों जन्मों तक भटकने पर भी किसी को आत्मा का भान ही नहीं हो सकता न! अर्थात् इसमें तो काफी कुछ पाप जल जाते हैं। अत: अब आपको पिछले कर्मों की चिंता नहीं करनी है। आपके लिए तो मेरी आज्ञा में रहना ही धर्म है।

प्रश्नकर्ता : हमें जब ज्ञान हुआ उससे पहले जो सारे कर्म थे, उनका क्या होगा? वे क्या बाद में अगले जन्म में भोगने बाकी रहेंगे?

दादाश्री : वे जो कर्म थे, वे इसी बार भोग लिए जाएँगे। अगले जन्म के लिए कोई भी कर्म बाकी नहीं बचेगा। जितने नए कर्म बाँधे होंगे, उतने ही अगले जन्म में भोगने हैं और पुराने तो भोग ही लिए जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : दादा ने कहा है कि अभी भी बर्फ जैसे कर्म बाकी बचे हैं।

दादाश्री : तीन प्रकार के डिस्चार्ज होते हैं। एक भाप रूपी होते हैं, दूसरे पानी रूपी होते हैं और तीसरे बर्फ रूपी होते हैं। तो भाप और पानी का हम नाश कर देते हैं। सिर्फ बर्फ का ही हम से नाश नहीं हो सकता। वे भुगतने ही होगें। देखो न, भुगत रहे हैं न? सिर्फ बर्फ ही भुगतते हैं और मस्ती में रहते हैं। विज्ञान समझ गए हो न!

प्रश्नकर्ता : यह तो ठीक है कि आपने हमें शुद्धात्मा की दृष्टि दे दी है लेकिन अब, यह दृष्टि मिलने से पहले हमने जो निकाचित कर्म बाँध लिए हैं, वे तो आएँगे ही, भुगतने ही पड़ेंगे, उनका क्या?

दादाश्री : उनमें से काफी कुछ भाग खत्म कर दिया है। जो भाप और पानी रूपी हैं, जम नहीं गए थे, वे खत्म कर दिए हैं और जितने जम चुके हैं, उतने कर्म भुगतने ही होंगे। जो बर्फ रूपी हैं, वे भुगतने पड़ेंगे। क्योंकि ज्ञानी पुरुष ज्ञानाग्नि से सभी कर्मों का नाश कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : ये जो निकाचित कर्म भुगतने पड़ते हैं, उनको आत्मा ही भुगतता है न? तब उसका कर्तापन तो आया ही न?

दादाश्री : आत्मा को कुछ भी नहीं भुगतना होता। आत्मा तो परमात्मा है, उसे भुगतना होता होगा? इन्हें तो व्यवहार आत्मा भुगतता है। जिसने सुख भोगा, वही दु:ख भुगतता है। और जिसने दु:ख भुगते हैं, वही सुख भोगता है। वह व्यवहार आत्मा है और व्यवहार आत्मा में चेतन नहीं है, ऐसा गारन्टी से बताता हूँ। पूरा जगत् चेतन के बिना चल रहा है, लेकिन चेतन की उपस्थिति से चल रहा है।

अपना यह पूरा साइन्स है न, इसलिए काम निकाल लेना। मैं तो इतना ही कहूँगा, 'मैंने काम निकाल लिया है, आप भी काम निकाल लेना।' ये जो अंदर बैठे हैं प्रत्यक्ष, जो माँगोगे, वह दे सकते हैं। इस दुनिया में अध्यात्म से संबंधित कोई भी चीज़ माँगो, वे सारी चीज़ें यहाँ पर कैश बैंक के रूप में नकद दे देंगे।

(परम पूज्य दादाश्री की ज्ञानवाणी में से संकलित)

Atmagnani Pujya Deepakbhai's USA - Canada Schedule - 2024

USA & Canada: +1-877-505-DADA (3232) Email - info@us.dadabhagwan.org

Date	Day	From	To	Event	Venue
21-Jun	Fri	5:00 PM	7:30 PM	**Satsang**	**Houston, TX** Gujarati Samaj Hall 9550 W Bellfort Ave. Houston, TX 77031
22-Jun	Sat	11:00 AM	12:30 PM	**Aptaputra Satsang**	
22-Jun	Sat	5:00 PM	8:00 PM	**Gnanvidhi**	
25-Jun	Tue	6:30 PM	8:00 PM	**Satsang**	**Tampa, FL** Indian Cultural Center 5511 Lynn Rd. Tampa, FL 33624
26-Jun	Wed	11:00 AM	12:30 PM	**Aptaputra Satsang**	
26-Jun	Wed	5:00 PM	8:00 PM	**Gnanvidhi**	
28-Jun	Fri	6:00 PM	7:30 PM	**Satsang**	**Raleigh, NC** HSNC Temple - Cultural Hall 309 Aviation Pkwy, Morrisville, NC 27560
29-Jun	Sat	11:00 AM	12:30 PM	**Aptaputra Satsang**	
29-Jun	Sat	5:00 PM	8:00 PM	**Gnanvidhi**	
6-Jul	Sat	5.30 pm	7.00 pm	**Satsang**	**New Jersey** DoubleTree by Hilton Somerset 200 Atrium Dr Somerset, NJ 08873
7-Jul	Sun	11:00 AM	12:30 PM	**Aptaputra Satsang**	
7-Jul	Sun	5.00 pm	8.00 pm	**Gnanvidhi**	
8-Jul	Mon	10:00 AM	1:00 PM	**Niruma Gnan Day Celebration**	
12-Jul	Fri	7:00 PM	9:30 PM	**Satsang**	**Toronto, Canada** Renaissance by the Creek 3045 Southcreek Rd Mississauga, ON L4X 2X7
13-Jul	Sat	11:00 AM	12:30 PM	**Aptaputra Satsang**	
13-Jul	Sat	5:00 PM	8:00 PM	**Gnanvidhi**	
17-Jul	Wed	10:00 AM	12:30 PM	**Satsang**	**Chicago, IL** Schaumburg Convention Center 1551 Thoreau Dr N Schaumburg, IL 60173
17-Jul	Wed	4:30 PM	7:00 PM	**Satsang**	
18-Jul	Thu	10:00 AM	12:30 PM	**Satsang**	
18-Jul	Thu	4:30 PM	7:00 PM	**Satsang**	
19-Jul	Fri	10:00 AM	12:30 PM	**Pran Pratistha**	
19-Jul	Fri	4:30 PM	7:00 PM	**Satsang**	
20-Jul	Sat	10:00 AM	12:30 PM	**Aptaputra Satsang**	
20-Jul	Sat	4:30 PM	7:30 PM	**Gnanvidhi**	
21-Jul	Sun	8:00 AM	9:00 AM	**Gurupu. Pujan, Aarti, Message**	
21-Jul	Sun	10:00 AM	12:30 PM	**Gurupurnima Darshan**	
21-Jul	Sun	4:30 PM	7:00 PM	**Gurupurnima Darshan**	
22-Jul	Mon	10:30 AM	12:00 PM	**Satsang**	
27-Jul	Sat	5:00 PM	7:30 PM	**Satsang**	**Los Angeles, CA** Jain Center of Southern CA 8072 Commonwealth Ave Buena Park, CA 90621
28-Jul	Sun	11:00 AM	12:30 PM	**Aptaputra Satsang**	
28-Jul	Sun	4:30 PM	7:30 PM	**Gnanvidhi**	

अविवाहित युवकों के लिए आप्तपुत्रों द्वारा ब्रह्मचर्य शिविर दि. 14-16 जून 2024

मोबाइल - इन्टरनेट, विषय-विकार के कुसंग से कैसे छुटकारा पाएं, उसकी सच्ची समझ प्राप्त करने हेतु यह शिविर आयोजित की गई है। जो युवक इस ब्रह्मचर्य शिविर में भाग लेना चाहते है, उसकी उम्र 21 से 30 के बीच और आत्मज्ञान लिए कम से कम 1 साल हुआ होना जरूरी है। आपका रजिस्ट्रेशन करवाना आवश्यक है। कृपया अधिक जानकारी और रजिस्ट्रेशन के लिए MBA office नंबर 9033501571 पर संपर्क करें।

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सानिध्य अडालज में सत्संग कार्यक्रम

PMHT शिविर - वर्ष 2024

22 से 26 मई (बुध से रवि) **PMHT (पेरेन्ट्स महात्मा) - सत्संग शिविर**

सूचना : यह शिविर ज्ञान लिए हुए विवाहित महात्माओं के लिए ही रखी गई है। शिविर में भाग लेने के लिए रजिस्ट्रेशन करवाना आवश्यक है।

हिन्दी सत्संग शिविर - वर्ष 2024

5 जून (बुध)	सुबह 10-30 से 12	- आप्तपुत्र **सत्संग**
	शाम 5-30 से 7	- **हिन्दी आप्तवाणी पुस्तक पर पारायण**
6 जून (गुरु)	सुबह 10-30 से 12	- **सत्संग** (प्रश्नोत्तरी हिन्दी आप्तवाणी पर)
	शाम 5-30 से 7	- प्रश्नोत्तरी **सत्संग**
7 जून (शुक्र)	सुबह 10-30 से 12	- **सत्संग** (टोपिक - PMHT)
	शाम 5-30 से 7	- **सत्संग** (टोपिक - मान)
8 जून (शनि)	सुबह 10-30 से 12	- प्रश्नोत्तरी **सत्संग**
	शाम 4-30 से 8	- **ज्ञानविधि**
9 जून (रवि)	सुबह 10-30 से 12-30	- **शिविरार्थीओं के लिए पूज्यश्री के दर्शन**
	शाम 5 से 6-30	- प्रश्नोत्तरी **सत्संग**

सूचना : यह शिविर गुजराती भाषा नहीं जानने वाले मुमुक्षु-महात्माओं के लिए साल में एक बार हिन्दी में विशेष रूप से आयोजित की जाती है। शिविर में भाग लेने के लिए रजिस्ट्रेशन करवाना आवश्यक है।

पूज्य नीरूमाँ / पूज्य दीपकभाई को देखिए टी.वी. चैनल पर...

भारत

- **'साधना'** पर हर रोज़ सुबह 7-50 से 8-15 और रात 9-30 से 9-55 (हिन्दी में)
- **'दूरदर्शन उत्तरप्रदेश'** पर हर रोज़ सुबह 7-30 से 8 और दोपहर 3 से 4 (हिन्दी में)
- **'आस्था'** पर हर रोज़ रात 10 से 10-20 (हिन्दी में)
- **'दूरदर्शन सह्याद्रि'** पर हर रोज़ सुबह 7 से 7-45 (मराठी में)
- **'दूरदर्शन सह्याद्रि'** पर हर रोज़ दोपहर 3-30 से 4 सोम से शुक्र और शनि-रवि दोपहर 11-30 से 12
- **'आस्था कन्नड़ा'** पर हर रोज़ दोपहर 12 से 12-30 तथा शाम 4-30 से 5 (कन्नड़ा में)
- **'दूरदर्शन चंदना'** पर हर रोज़ शाम 6-30 से 7 (कन्नड़ा में)
- **'धर्म संदेश'** पर हर रोज़ सुबह 2-50 से 3-50, दोपहर 2-30 से 3 तथा रात 8 से 9 (गुजराती में)
- **'दूरदर्शन गिरनार'** पर रोज़ सुबह 7-30 से 8-30, रात 9 से 10 (गुजराती में)
- **'वालम'** पर हर रोज़ शाम 6 से 6-30 (सिर्फ गुजरात राज्य में) (गुजराती में)

त्रिमंदिरो के संपर्क : अडालज : 9328661166-77, **राजकोट :** 9924343478, **भूज :** 9924345588, **मुंबई :** 9323528901, **अंजार :** 9924346622, **मोरबी :** 9924341188, **सुरेन्द्रनगर :** 9737048322, **अमरेली :** 9924344460, **वडोदरा :** 9574001557, **गोधरा :** 9723707738, **जामनगर :** 9924343687, **भावनगर :** 9313882288, **अहमदाबाद (दादा दर्शन) :** 9574001445, **वडोदरा (दादा मंदिर) :** 9924343335, **दिल्ली :** 9810098564, **बैंगलूर :** 9590979099, **कोलकता :** 9830080820
यु.एस.ए.-केनेडा: +1 877-505-3232, **यु.के.:** +44 330-111-3232, **ऑस्ट्रेलिया:** +61 402179706

भादरण : अविवाहित बहनों का शिविर : ता. 12 से 15 मार्च 2024

अडालज : सत्संग - ज्ञानविधि : ता. 16-17 मार्च 2024

अडालज : पूज्य नीरूमाँ की 18वीं पुण्यतिथि : ता. 19 मार्च 2024

मई 2024
वर्ष-19 अंक-7
अखंड क्रमांक - 223

दादावाणी

Date Of Publication On 15th Of Every Month
RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. G-GNR-348/2024-2026
Valid up to 31-12-2026
Licensed to Post Without Pre-payment
No. PMG/NG/036/2024-2026
Valid up to 31-12-2026
Posted at Adalaj Post Office
on 15th of every month.

खुद को अपना वास्तविक भान हो जाए तो मुक्त हो सकता है

अक्रम विज्ञान अर्थात् क्या? आत्मा और अनात्मा का विवरण होकर, दोनों अलग हो जाते हैं। एक आत्म विभाग, वह खुद का क्षेत्र है और एक अनात्म विभाग, वह परक्षेत्र है। ये दो भाग जब तक जगत् नहीं जानता, तब तक 'मैं चंदूभाई हूँ', बोलता रहता है। वह सापेक्ष आधारी है। 'मैं चंदूभाई हूँ', कहता है तब वह उत्पन्न हो जाता है। 'मैं चंदूभाई हूँ', ऐसा भान होता है, तो 'आप' आधार देना छोड़ दो, इसलिए वह गिर ही जाता है। 'मैं चंदूभाई हूँ', वह विनाशी है, उसे 'खुद अपना' मान बैठा हो। आप 'खुद' तो सनातन हो, पर वह भान उत्पन्न नहीं होता। वह भान हुआ कि मुक्त हो गए!

-दादाश्री

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation - Owner.
Printed at Amba Multiprint, Opp. H B Kapadiya New High School, Chhatral - Pratappura Road,
At - Chhatral, Tal : Kalol, Dist. Gandhinagar – 382729.